Acharya
Rameshwar
Jha



[illegible] अतिवचनीय आनन्द के अनुभव के भाग्य से ये वाक्य
रहे, या रहित हैं, (फिर अनुभव) सम्पूर्ण वेद्य विषय से रहित करता है।
(परमानन्द पद में स्थिर करता है)
(उस आप के अवनि [illegible] कोर अवस्था-दशा है, इसको दूसरे जानने
में सर्वथा असमर्थ होते हैं क्योंकि वह अवक्तव्य अवनीय —)
आपके परम कृपा से [illegible] के [illegible] [illegible]
प्रकाशन से प्रत्यक्ष हो गया है विशुद्ध विकार रहित [illegible] उनके स्वरूप
[illegible] जिसको वह है। तथा (अतएव) आप से अभिन्न हो गया है
मेरे जैसे परम भाग्यवान हैं। [illegible] शक्ति से निश्चित हैं।
[illegible] [illegible] प्राप्त है। [illegible] और परमशिव
[illegible] मेरा यही प्राप्त [illegible] शिव है [illegible] है अनन्त आनन्द
[illegible] के आश्रय [illegible] और इसका [illegible] है उसको
[illegible] है। [illegible] दशा (है) [illegible]
[illegible] द्वारा [illegible] अवगत और [illegible]
[illegible] हो गया है (उस) [illegible]
अवस्था दशा को [illegible] कौन [illegible] है।
यह मैं [illegible]
[illegible] में [illegible]
[illegible]

(२७)

[illegible]

(२८)

[illegible]

(२९)

[illegible]

#69

#69

410

658

65B 410 69A

(२१)

रमां सन्ध्ये ... इतीं अनं ... लेदध्ये
(सुरोपं) ... (सम्बोध्य) ... (विलोप्य)
... मम ह्रदि ॥

(२२)

... (मार्तण्डकान्ती)
वृत्तं ... संहरति यत्र
...
... मम भव मयत ॥

(२३) (वागकान्ती)

विनाशं कुर्वन्ते
...
...
...
...

(आदित्यतन्द्रे) (२४)

[illegible] पहाड़ी [illegible] और उस यहाँ रहते हुए प्रभु [illegible]
महान् आनन्द है वहाँ पर आप जैसे के दर्शन होते रहें न
निजानन्द लहरियों से दिन रात आलिङ्गन करते रहते
थीं। अब भी यहाँ भजन वाले रहने की जगह से
समुन्नत भी मैं दिन रात प्रयत्न करने पर भी उस अनुभू-
त परमानन्द सिन्धु का एक कण भी नहीं प्राप्त कर पा
रहा हूँ। नये नये दिन आते हैं और आये चले जाते हैं। नहीं
कह सकता हूँ यहाँ भी कितने और बीत गये। मूक एवं मूक-
वत् केवल दिन बिताता रहता हूँ। न कुछ दुःख है
न विमुक्तता है केवल इस नियति शक्ति के आगे झुकता
जाता हूँ करने के लिये उत्साह नहीं कर पाता हूँ।

परन्तु यह तो मैं आप भी दृढ़ता से जानता हूँ और उसको
भी कह रहा हूँ कि मन पर वाणी से भी कभी किसी से केवल
कथा मात्र ही नहीं करता हूँ। देखिये तो यह नियति कैसी
है। जिससे शिव भी आगे भूत = (रुद्र) होकर नाचते हैं और स्वार्थ
[illegible] शक्ति के भी शिव को नियति की ही साथ देने लगती है
मैं जानता हूँ और विश्वास भी है कि आप मेरे वचन को बनावटी मात्र नहीं
मानेंगे। परन्तु [illegible] जब जब मन यहाँ कोलाहल से उकता
उठता है तभी तभी कहाँ रहूँगा कैसे रहूँगा कैसे पहले की ही तरह
दिन बिताऊँगा इत्यादि [illegible] ध्यान आता रहता [illegible]
[illegible] (… रहता है) मुझे अनुभव आपकी पहचान
[illegible] है कि यदि [illegible] चेतनता [illegible] होकर [illegible] जाना पड़े तो उस
[illegible] सम्पूर्ण सम्पत्ति [illegible] वाले [illegible]
थी। कितना लिखूँ [illegible] मैं स्वयं जानता हूँ कि यह मनवाणी
मेरी कुन्द फूल के समान है (जिसमें फल नहीं होता है) आश्चर्य [illegible] है
जब तक कि यहाँ आने के लिये अपने आप [illegible]

68 B 409

ॐ

१, किंफलाहतभाग्येयं प्रत्यभिज्ञा भवेन्मम ।
आजन्माराधितो यस्या लक्ष्मीवान् पूर्वकालिका॥

२, सर्वलक्षणसंपन्नो लक्षितो लक्षणैर्निजैः ।
आराधितोऽपि चेदद्य लक्ष्मण पूर्वकालिका ॥

३, अथवा प्रत्यभिज्ञाऽपि कथंकारमियं भवेत् ।
अभिज्ञातुः स्वरूपं चेत्पूर्वकालिकतामियात् ॥

४, वेदेदात्माऽपि कस्याश्चेदहन्ते पूर्वकालिकः ।
कि तेन वदनेनाऽपि स्वात्मा स्वात्मा सनातनः ॥

५, अधुना न तवाऽहं भोरस्म्यहं पूर्वकालिकः ।
इति व्याहरता प्रोक्तं स्वात्मना किन्न सम्प्रति ॥

६, सर्वदृक्सर्वदृष्टोऽपि स्वात्मा मे सार्वकालिकः ।
कथंकारमहो एष सांप्रतं पूर्वकालिकः ॥

७, नूनं भावपरिच्छेदकृत कालपरिच्छिदा ।
प्रमातर्यैव नास्त्येव चिद्रूपे तु मयि त्वयि ॥

८, भावोऽयं भावनोद्भूतो भासमानोऽपि निजेक्षणे ।
स्वालक्षण्यं भिदन् भेदं भासयत्येकरूपताम् ॥

९, अपि वदत्वयं स्वात्मा "तवाहं पूर्वकालिकः" ।
तथाप्येतद्वदन्नेष ममेदानीन्तनायते ॥

१०, सर्वस्वातन्त्र्यसंपन्नश्चमत्कुर्वन् यथा तथा ।
स्वेच्छया विमृशन् स्वैरी स्वात्मानं केन वार्यताम् ॥

—— ० ——

नमः श्रीगुरवे

अज्ञानोपहता जीवाः
सद्यो विज्ञानसम्पदः ।
भवन्ति, यं समाश्रित्य
तं वन्दे प्रभुलक्ष्मणम् ॥
(१)

यस्यानन्दमहासिन्धो-
र्रोर्वाङ्गे गतां जनाः ।
स्फुरद्भिः सीकरैस्तृप्ता-
लभन्तोऽनुत्तरम्पदम् ॥

तं गुरुं भवपापघ्नं
श्रीमल्लक्ष्मण संज्ञकम् ।
अदृष्टाश्रुत कर्तारं
वन्दे पीयूषवर्षिणम् ॥
(३)

भवभीतो मादः

अखण्ड ब्रह्माण्ड मयं शरीरं
कृतं ममेदं गुरुणा तु येन ।
अनर्घपुण्योदय दर्शनोऽसौ
ददातु भक्तिं निजपादपद्मे ॥

गुरुदेव ! नमस्तुभ्यं
शिवाय परमात्मने ।
नीरूपाय विश्वरूपाय
विश्वविग्रहशालिने ॥
(५)
अङ्गायते विश्वमिदन्नु यस्य
देहोऽपि मध्यस्थ सुमेरुकल्पः ।
इत्थं नृदेहेऽपि विभासमाने
शिवोऽस्ति पूर्णो गुरुराज एषः ॥
(६)
श्रीमद्गुरोः पदाम्भोजं
नित्यं मे भजतो हृदि ।
पराचार्यपरा सिद्धिः
स्वयं भूतानुगामिनी ॥
(७)
शिवोऽहं शिवतुल्योऽस्मि
यस्य श्रीकृपया गुरोः ।
तं वन्देऽहर्निशं देवं
गुरुं लक्ष्मणमेककम् ॥
(८)
आचार्यरामेश्वरः ॥

अयि अनन्त शक्ति सन्दोह शालिनि प्रभो।
विजयन्ते ते शक्तयः।

आपका तीर्थयात्रा का पत्र मुझे मिला है। जम्मू से मैं भारत काशी से हरद्वार और अब अटारि क्षेत्र में भ्रमण कर रहा हूं। ~~[illegible]~~ मैं काशी से चलते समय श्रीगुरु स्तुति सहित एक पत्र आपको भेज आया था वह आपको मिला होगा। जो स्तुति खो गयी है वह हमारे पास नहीं है और उसे मैं पुनः लिखने में भी असमर्थ हो गया हूं। वह स्तुति खोने से मुझे कितना दुःख दिया है यह मैं क्या कहूं वह [illegible] पहुंचे मुझे बहुत अच्छी लगी थी और [illegible] भी मैं उसे अभ्यास न होकर [illegible] तो इसलिये नहीं कि [illegible] इच्छा लिखो हि खोता है ही।

आजकल मैं परम स्वतन्त्र हूं इतना कि कुछ पत्र आदि लिखना भी नहीं सोचता विशेषता मनवही हूं सचमुच मौन ही मूढ़ जैसा रहता हूं कुछ काम करना नहीं होने से इह: [illegible] कुछ काम करने की [illegible]

406 62 A

प्रेम्णा प्रीतिमया श्लिष्टं तुभ्यं मैत्र्यान्वितं नमः।
तथा तस्यै महादेव्यै सम्मातृकायै नमः पुनः॥

?

अति चिरकालानन्तरं समासादितं भवत्पत्रं
विदितं सर्वसमाचारम्। इदं समाकर्ण्य परमातिः [illegible] धन्य
भवत्प्रार्थितविचारेणैव सोऽस्मत्यापि [illegible]।
इदानीं ममागमने नास्ति नूनं कश्चिद्विशेषः आग-
कौतूहलः प्रसरेत्। अतोऽहमिदानीं तत्रैव [illegible]
आगन्तुं विचारं परित्यजामि। पुनर्यदा [illegible]
अनुकूलः स्यात्समयस्तदा भवता स्मरणीयः पुनः [illegible]
इदं भवतः सम्मति [illegible] [illegible]। [illegible]
यद्यपि [illegible] [illegible] विचारः [illegible]
[illegible] पुनः [illegible]
[illegible] [illegible] भवदादीनां कथं
विचारं परिवर्तने [illegible] विलम्बो [illegible]
[illegible]। [illegible] [illegible] एवंविधः
[illegible] भेदः पुनः [illegible] भेदः। [illegible]
एवं [illegible] [illegible] संसारे ॥
प्रवाहस्य [illegible]। [illegible] [illegible]॥
[illegible] [illegible]। श्रीगुरो [illegible] ॥
प्रा-

जीयो
गेरुदम्

67 B 207

[illegible] है। समाचार तो यह है कि इतनी गहरी शान्ति मुझ [illegible] नहीं लगा रही है। [illegible] भीतर संघर्ष करके रहने की प्रतीक्षा ही करता है [illegible] मन संहार के अनन्तर [illegible] होते ही पुनः [illegible] हो जाता है। वस्तुतः स्वरूप की अनन्त स्वरूपता [illegible] स्वतंत्र है। क्योंकि है। शान्त स्वरूप [illegible] आत्म शान्ति [illegible] को [illegible] है [illegible] स्वरूप [illegible]। अच्छा प्रणाम। आपके पत्र [illegible] पर मैं अपना कुछ कार्य [illegible] प्रतीत हो रहा है। देखें और होता है।

आपका —

सेठ मोहन चन्द्र राधाकृष्ण धर्मशाला
ऋषिकेश
जि॰ देहरादून

67 B 407

[illegible] और कुछ काम काज [illegible]

नहीं है । मैं [illegible] कोई अपराध नहीं है शायद
इसी लिये [illegible] ऐसी रहती है । अस्तु । भगवान्‌ने
"क्षमामि तावकं" [illegible] एक प्रतिज्ञा [illegible]
[illegible] है अब [illegible] में [illegible]
[illegible] वह [illegible] है और [illegible]
[illegible] नहीं है ।

श्री स्वामी जी [illegible] मेरी यह [illegible] है
[illegible] हो गया होगा उनके चरणों में प्रणाम
निवेदन करें । [illegible] नमस्कार
और सबों को भी नमस्कार । आप कहां भी ।
आज [illegible] में काश्मीर के बहुत [illegible] लोग
हमें मिले थे । देखिये [illegible] ही [illegible]
[illegible] होती है और उसको [illegible] कितना [illegible]
[illegible] हो सकता है । अब मैं यहां से [illegible]
[illegible] नहीं है यहां पर भी [illegible]
[illegible] उपलब्ध है । [illegible]
[illegible] नहीं है । [illegible]
[illegible] यह [illegible]
आपके [illegible] को [illegible] होता है
हूंगा आप [illegible]
और आप लोगों के [illegible] काश्मीर भी

66 406

...मनयोर्मध्ये प्रकारभ्रमणशीलोः समर्थ समर्पणीयो ...मसकीनः। भ्रातः श्रीमन्मोहन लाल महोदयैः ...स्य चार्य पत्नी शुचि मम नमस्कारः कथनी यः।

यदि कदाचित् शुभागिनः भवन्तः सावेश्ये आगन्तव्यम् तदा सा कथनीयर दत्तिः नमस्कारः पत्र... ... प्रेषणपत्रं मार्ग एव केनापि परिगृहीत... सर्वं कृतं च पापि मम सावेश्ये नास्ति ... एवं ... पत्रो... ... अशक्तोऽस्मि।

अन्ये ... अनन्तः यर भवती आगमन ... ... [illegible] ... एव भवन्तः कथं ... जनसमागमे नगरे ... याति

अस्थिरे च भ्रमत्याऽनिय गन्धर्वनगरोपमे ।
संसारास्ये तिरश्चेषु स्वस्वरूपप्रकाशिका ॥
भास्यां भ्रमानुरागोऽस्ति वैराग्यं चापि नास्ति वै ।
न कोऽप्यास्थिरतां चोरस्या न निराकृति कामना ॥
यथा भवेद् यथा चाऽस्ति तच्च ज्ञानं भजं सदा ।
प्राप्य दैवेन च नरस्त्रैव कि मे चोक्ति भवामि न ॥

बहुशः कृत यत्नोऽपि न हो मे कोऽपि दृष्टवापि
व्यतीतं चैकवर्षः सर्वं न जीवनाते चिकित्सितं।
इत्यमेवं विपरस्थेन स्वामिनैव तद्दर्शनं प्रभो।
लोकपालेर यथा भूपतं तथा भवतु सराप्रतम्॥
ईश्वरं प्रणमे श्रीरुदे पारमार्थं लोकभावका
बालधा जागति हृदये तस्मिन् स्थितः परविनीर
यदि स्यात् कोऽपि समयः लोके स्थातुं तत्परहा।
तदा हं सर्वतः पूर्णकाये मे तत् प्रतीयते॥
न आगतोऽप्युपायोऽस्ति बहुधा प्रयाचितेः
समया बहुधा दृष्टः सर्व कृपया प्रभो।
ते एवं मे कि [illegible] नित्यं विदधे तेऽध्वना
न हि क्रीडा भवेत् यदि लोकोपकारबन्धे प्रभो
तत एवाहं शरीरस्य धारणं कर्तुं मनीषमि॥
न मे लोकोपकाराय नार्थाय यशसेऽपि न
[illegible] शरीरस्य प्रभो किन्तु [illegible] हेतवे
दैवं वशीकृतं दृष्ट्वा ईश्वर शीघ्रमेवाहं
यतस्वश्चैव मे सर्वं कर्तुं चापि कथ्यते॥

पत्र द्वयं उत्पादन्तं पत्र मेतत्तृतीयकम् ।
कथं नैतत् मे प्रेमं दातुमुत्तीह ते प्रभो ॥
अनागतवान्नरात्रीकं पूज्यो मे गुरुसत्तमः
यतो गतो इतस्त्वान्नो लोकोऽप्यापि महासुखी ॥
अदिते तिमिरश्नौ हि पन्थाः सर्वे प्रकाशते
निर्भयः सकलो लोको याति सर्वासु दिक्षु च ॥
उदयास्तविहीनोऽपि रवि लौकैरसौ दृश्यते -
उदयास्तयुतः, किन्तु न प्रभोरस्तु कदाचन ॥
प्रभो त्वमान्तैश्चरामि प्रभुणाऽहृदमूर्तिना
न आगन्तुं, परं प्रेम्णा कृतश्चास्मि वशंगतः ॥
नोत्साहोऽस्ति ~~[struck out]~~ न चोल्लासं न सुखं दुःखमेव वा
कथं वर्तेऽन्न तेनात् बुद्धिसंचाप्ति, न स्वयम् ॥
न लभेऽनादतोऽदुःखं नानन्देऽपि सुखं स्वहेतुः ।
प्रायेत्यं हि कृतश्चापि तेन तं कितं नमास्पदम् ॥
यथा प्रातिभया देव्यौ प्राप्ते ते उत्तमयो
तापि मे मन्दभाग्यस्य कुतो ते न द्वयं इमे ॥
अथवा यातु कुत्रापि, न तया मे प्रयोजनम्
एकाकी निवसाम्येवं जीवन्तोऽपि मृतोऽस्म्यवते ॥
लभन्ते किन्तु! जीवन्तो मृतानां किन्तु दीयते
लाभेऽपि इति श्चावर नैव स्वमाहात्म्यस्थितेऽस्यमे ॥

पहला मोड़ First fold

इदानीं ध्यायमानं तु यतो
प्रतः प्रीतिवर्धकं हि
आगतं कुं स्वरा इव तं
आत्महेतं सम्मन्विते: ॥
प्रष्टुं कर्मयं नित्यं
किन्नु स्वतंत्र्याय परम्पराम् ।
अभूत्वेन विलम्बोऽपि
भूत्वा यतोऽधुना प्रभो ॥
आगत्य त्वं कारं ध्यामि
इच्छति चोय शालेनां ।
देव्यै देया नातिरेयं
सारे कार्ये मयाकृता ॥
इति
रा. भी.

श्रीमती णु महर देवी–
ध्यान सभासु राजताम् ।
नाति विनय संयुक्ता
सर्वासिद्धि फलप्रदा ॥
(१)

अवाप्यापि च ते पत्रं
न दत्तं शीघ्रमुत्तरम् ।
आगत्यैवोत्तरं दास्ये –
इति निश्चेय शालिना ॥
(२)

~~अपि आगते~~
आगमनं ~~है~~ भवितव्यं
मयापि ते पदः प्रभो ।
पत्रयाक्यन्तरं सद्यो
इहै चाद्य स्थवरादेने ॥
३

प्रभो! विशाततत्त्वेन विश्वं स्वात्मनि पश्यतः
किं हेयं किमुपादेयं शिष्यते सर्वव्यापिनः ।
नास्ति यत्नं, करोमि, तथापि किं च न
~~नासीन् स्वासीन संदशतिष्ठन न करोमि करोमि च~~
प्रभो मे पदयोः प्रीतिः स्वाये नित्यं विराजते
तया व्यवहरन् सर्वं परां तृप्तिं भजाम्यहम् ॥
व्यवहारमयो योऽयं संसारः परिदृश्यते
इतरैव स्वस्वरूपस्य भाने भवति सर्वदा ॥
यद्यप्ययं हि संसारः दुःखदः मोहदः सदा
संसारे धारमूढैः तथापि नाहं तेषां विकारवान् ॥
इत्थमेवं भवतापि स्थीयते इति वेद्म्यहम् ।
तथापि किं प्रमोदाय वार्ता मे प्रवर्तते ॥
किमर्थं नैव गम्यते! दीयते वा भवतापि च
दीयते न ज्ञानैः सर्वैः स्थैर्यं मे क्रियतां प्रभो ॥
अथवा नियमो नास्ति दुःखोपास्त्यां प्रकुर्वतः
"इदं वाच्यमिदं नेति" तेनेत्थं मे विजृम्भितम् ॥
नाम व्यपात्तं कथ्यताम् लोकदृष्टिः प्रभो यतः
बोधो भावेन मोहेऽपि तथैव तस्य प्रकाशते ॥
पुनः पुनः अस्यार्थं वा पुरा हि वं भावितस्त्वया प्रभो ।
ततो विभाव्य पुनर्याचे बोधदार्ढ्यं भवत्पदम् ॥
लोकानां व्यवहारश्च भाति मे हृदयं प्रभो
न लोकेन समं स्थातुं वक्तुं वा शक्यतेऽनघ ॥
लोकं तथापि सन्त्यज्य क्व गच्छामि वसामि वा
इति लोकेन साकं हि वसन्ती लोकानुगोऽस्म्यहम् ॥

649 402

नीतस्त्वयाहं काश्मीरं ~~त्व~~ X

काश्मीरात् त्वयैवाहं बहिष्कृतः ।
नेतः, इत्यादिकं सर्वं
जानामि त्वत्प्रसादतः ॥

किन्तु प्रभो! त्वमद्यापि ~~विस्मृतं~~ X
तथैवासि प्रियो मम ।
भूयाच्चापि पुनर्भूयः
प्रीतिर्मेऽस्त्वेवं सर्वदा ॥

एकस्वरूपापि विभिन्नरूपा
कस्मै विहीनापि च सं क्रमस्ते
शब्दोऽप्यशब्दा भवती विभाति
किं वाच्मि मातस्तव वत्सलोऽस्मि ॥

बोराजलीत

पहला मोड़ First fold

L103

कुशलमवगतम् । कार्येऽस्मिन्नागमनाय तेन ।
इदानीं नातोऽप्यधिकं वक्तुकामो विरमामि ।
भवत्क एव सः ।

वर्षेऽस्मिन् काश्मीरागमनेनानेनावसरेण पावनमायेतामिच्छतीवाय मम
मानसमंकोरितः तत्पुत्रः । किमपरमिदानीं वक्तव्यम् ।

अयि परमानन्दरसस्रोतस्वति ! प्रभो !

विजयस्तेऽस्तु ।

कुशली चाहं नितान्तकार्यव्यापृतोऽस्मि साम्प्रतम् । यतः पुस्तकप्रकाशनं भवति ।
यतोऽहं जीवो निग्रहानुग्रहात्मकर्म स्वाधीनं स्वस्वभावं न जानाति, अहं न वा निग्रहमनोरमरूपं पश्यति । विमोचितो निग्रहाद् यतः कालपाशच्छिन्नात्मतां भजमानः, सुखदुःखात्मकोर्ध्वाधःपदेषु विविधास्ववस्थासु चावस्थितः स्वं स्वरूपमुपलब्धुं स्वस्वभावं न पश्यति ।
नाहं [illegible] पलीभूते जले, जले वा कृते घनतातलतामयं कालवशगताभ्यां किञ्चिद्भिन्नत्वमेति ।
इतः पूर्वमपि शरणागतविषयविवेचनावसरे पत्रं त्वत्सविधे प्रेषितमासीत् । परं न जाने प्राप्तं भवता नवेति । सर्वेभ्यो मदीयेभ्यो मदीयाभ्यश्च सर्वेभ्यः एव मदीयो विहितोऽञ्जलिर्विज्ञापनीयो भवता । समागताश्चात्र [illegible] श्रीस्वामिमहेश्वरदेवानां वरदः तत्त्वादपि भवतां दीनां

अयि सर्वात्मिके ! प्रभो !

अभिरक्षतां ते विजयः ।

कं वाच्मि ! किं वाच्मि ! कथन्नु वाच्मि !
याचेऽपि कं ! किन्नु ! कथं ! किमर्थम् !!
स्वातन्त्र्यशालैव शिवस्वरूपः
सर्वात्मकोऽयं यदहं विभामि ॥

अद्वैतं रोचते तुभ्यं द्वैतं मह्यं प्ररोचते
इति भिन्नदृशोः सम्यं वृथा धात्रा विनिर्मितम् ॥

विधिश्चापि निषेधश्च भासेते द्वावपि त्वयि
उत त्वत्तु तयोः सत्यमद्वैतं मयि संस्थितम् ॥ (शोभते / रोचते)

X खेदतो न प्रभो स्वीयं तुन्दं, किं कर्त्तव्यम्
अतस्त्वत्स्मृतिजन्यं प्रभो मे नैवं रोचते ॥

पौनःपुन्येन ते ह्यपि मम वाचो विरोधिको-
भवन्तीति विचिन्त्य मह्यं क्षमस्व ह्यहं प्रभो ॥

X आज्ञा त्वदीयास्ति यतः सावित्री-
दुःखस्य सर्वस्य, ममाचमस्य
तस्मात् तदाज्ञामनुवर्तमानः
करोमि सर्वं न मृषा वदामि ॥

उपसम्पदी

वा यथावगच्छाति भवती भरं किं तेन मे स्पार्द्धतो-
नाहं भवरागापि स्पृशते वर:, पत्पाटकाहित:
सुखे दुःखे द्वेष कारागादि दोषशतैरपि केन्चिद-
पि ।

साहित्यशास्त्र भर्मा नामेहाँ भवती भूराति
साहित्य वचस्य व्यवहरन्ते हे यन्महामौर्णि
भरचारितवान् तत् किं करोमि सम्प्रति
जभ्वानापरद्दते न्यते —

(अराति केषु रसस्य निवेदने
शिराहि मार्हितमराहितमरालेख)

मद्भूतत्वेन रतं स्वीकुर्वन्त्या: ।

किम्! स्वहृदयायतन सततोदित प्रतिभा मेधा नयवो-
द्देवतानुग्रहीतत्यन्नाचेऽप्यपूर्वार्थ निर्माण शक्ति शालि-
न: कवे: प्रजापतेरिव काम जनित जगत:, तत्तन्मोह
मात्सर्यास्तूयामूर्च्छा दशावस्थां तद्गताचितं नायकं
नायिकां वा पवर्णयत:, मोहमूर्च्छादिदोगेरामेमू-
तता (भवति) दृष्ट्वा श्रुत्वा वापि कैरपि कृपापि [illegible] यतं मद-
दारेण मयि स्पर्शां वा कल्पयन्त्या भवत्या सहैव
चेरत्पातौ चित्रेऽप्यञ्जनेद्याश्चित इव विकृत:
तिरस्कृतश्च दुर्भिरयर ।

किम्? यथा श्रूयते — दु:विशब्धा विद्धत्वं मद्धृदयस्य, मृत्यो
रपि मृत्युत्वं मञ्जीवनस्य, शिवात्मकत्वञ्च महत्तमेन:
मत्तोरचेतन विषयीभूत शिवशक्ति समन्तात्मकरातेऽचो (सादे) तन्नैव
प्रतिपादितं सर्वं एकपद एव स्वयुष्मायेन [illegible]
केन्चित्तरापि जाहि प्रतिबन्धकतया तथा कल्पनाभि-
कुर्वन्त्यो: भवत्या: समस्ते समय श्रितमा किमसत्यमेवा-
गति भवत्या मञ्जीवनं मृतं, किंवा दु:खितानोहृते मे हृदयमे)
यादि उरो भित्त्युच्यते, तदा मयि शिवत्वं समन्तात्मक
रत्यास्थार्थित्वमापि कथं भवेत् किं [illegible] ।
इत्याहो महान् [illegible] पराहरस्य [illegible] । अवगच्छातु

[illegible] संबन्ध मे [illegible] के विचार मे [illegible]
आयोग [illegible] (अनेक प्रकार) [illegible]।
[illegible] अभिनवगुप्त [illegible] कोई [illegible]
[illegible] इस प्रकार [illegible] लिये।

शास्त्रार्थ और अर्थों में भी दो दिन [illegible] के लिये उनके [illegible] विश्व विद्यालय में रहते हैं और मेरे रहने के स्थान से दूर है इसलिये मैं पहले दिन मैं ने उनको कुछ स्पष्ट शब्द में कहा था कि वहाँ और यहाँ में बहुत अन्तर है यहाँ को [illegible] यहाँ मैं बिना सवारी के इधर उधर भी नहीं चल सकता हूँ और चल भी नहीं सकता हूँ इसलिये वहाँ आने के लिये यदि आप दिन व्यय कर सकते हैं तब आपको पढ़ाऊँगा नहीं तो आप आकर पढ़ें। परन्तु वे [illegible] के लिये व्याकुल मनुष्य जैसा नहीं [illegible] यह तो मुझ [illegible] भी जैसा ही। उनको एक पुस्तक भी अभी तक [illegible] है।

यह सब [illegible] जिसके बिना [illegible] भी नहीं चल सकता है।

अब मैं पूज्य [illegible] जी के उद्देश से बोलूंगा और प्रश्न जो [illegible] मुझको देखती थीं अतः पुस्तक में भी अभिनवगुप्त ने मंगल स्थापित कर दी है वह एक श्लोक पहले आपको समझाता हूं।

उस स्वात्मज्योति देवी को प्रणाम करता हूं
जो सब जगह पदार्थ समूह रूप से चमकती हुई
विच्छेद रहित परमार्थ चमत्कार है
और पूर्ण [illegible] हैं और अहं रूपेण प्रकाशित होती है"
(अभिनवगुप्त)

(अलङ्कृतिरन्ते [illegible] शान्तिशालिते।
स्पर्शं [illegible] ॥ (अभिनवगुप्त))

यद्यपि विस्मृतिशीलो न भावबोध्यते पुनः पुनस्तथापि कृपया मिलनशीली भवतीति पुनरेकवारं भावबोध्यत एव। पर्बो- माहे-

न देशकालप्रमातृभेदनियन्त्रितो रसः काव्ये नाट्ये च वास्वाद्यते। अतएव न नटे काव्ये [illegible] रसः, कुत्र तर्हि! उक्तमेव देशकालप्रमातृभेदानियन्त्रितो रसोऽनुभूयते कविना सहृदयैश्च हृदयस्थ आस्वादनोपायभूतः। अतएव नटादयः पात्रम् उच्यन्ते न हि पात्रे मद्यास्वादः कृतः अपितु तदुपयोक्ता।

त एव पुनः काव्यार्थरसास्वादने अधिकारिणो भवन्ति, ये विमलप्रतिभानशालिहृदयाः, अत्यन्त मैत्र्या तिरस्कृतस्वपरविभागाः, परित्यक्ततत्तद्व्याक्षेपपात्राः, नदेशकालप्रमात्रादिभेदाः, सकलविघ्नविनिर्मुक्तत्वेन संवित्तयश्च सन्ति। इति च।

स्वगतत्वेन परगतत्वेन वा सुखसंविदात्मरसास्वादने तु यथासम्भवम् तदवगमभीरुतया तत्परिरक्षणव्यग्रतया सत्यमेव वा तत्सदृशार्जिजीविषया वा तत्प्राचिख्यापयिषया वा तद्गोपनेच्छया वा प्रकारान्तरेण वा अवश्यं संविदा हृदय में [illegible] स्यादित्येव परमो विघ्नो रसास्वादने। यथा मत्कृतकाव्यार्थरसास्वादनेऽमू हि घ्नो भवन्ति रसस्तु
(एकश्लोकोऽपि काव्यपदवाच्यो भवति)

श्री प्रेमी जी [illegible] में [illegible] पहुँचा है

[illegible] और [illegible] शिव शक्ति [illegible] विस्तृत [illegible]

[illegible] हो गया है।

[illegible] गुरुदेव [illegible]

[illegible] होगा कि [illegible]

प्राय: [illegible] पत्र [illegible] नहीं

आता हूँ।

आप का

रा. भी.

पुनः [illegible] – से पहले का यह श्लोक भी पुनः के

[illegible] के लिये लिख देता हूँ

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] मोहनलाल जी और सब [illegible]

[illegible] प्रणाम कहियेगा

62
299

रोम्णि रोम्णि रोविका चासि
इच्छा त्वं प्रतिका मम।
रचिका फलदा चासि
नौमि त्वां वरदा भव॥

प्रेमी जी [illegible] आप के [illegible] आनन्द [illegible]

कर अब मैं [illegible] भी "सर्वं [illegible]"

शिव रूप रहने लगा हूँ और तो पहले ध्यान रूप में

गुरु से देह में शिव रूप बने रहने पर भी निर्मल

समाधि हुई। इस [illegible] का गुरु स्तुति जो आप के

पालित क्रम में नहि न आये इस लिए भेज रहा

हूँ उसको अब किसी रविवार में मेरे बन्धुओं

सब को अर्थ सहित सुना देंगे बड़ी कृपा होगी।

और गुरुदेव के चरणों में समर्पित करेंगे मेरा

नियम भी पूरा हो जाएगा।

श्रीमती देवी जी के चरणों में

कोटिशः प्रणाम, विनय पूर्वक मेरी ओर से आप

प्रार्थना करेंगे कि अपने ध्यान मग्न अवस्था में

आशीर्वाद करेंगे जिससे मैं पूर्ववत दर्शन कर

सकूँ। आप से मुझे कहना ही क्या है क्योंकि सब

[illegible] दिन में मेरे ऊपर आशीर्वचन प्रयोग

करेंगे। अब शरीर में बल है परन्तु कृपा आप की

पराधीन ही करनी पड़ती है आप के पास आने

[illegible] में भी [illegible] है और

... है इसके ... हूँ वालों आपके ... पर ...
... रखेगा ... और उसी आधार पर आपने ...
... । यह अनन्य बात है कि ...
... उसकी ... करता हूँ ।
... गुरुदेव का ... ये श्लोक: ॥

पुनरेकेन विप्रेण श्रीश्रीनगरवासिना
अज्ञाततमगोत्रेण स्वयमज्ञात प्रार्थित:
नीतस्त्वं ह्यद्य वान् वादौ गुरोर्हृदयज शर्मण:
गुरुवाक्यात् प्राप्य विद्यैश्वर्यविलासिना:
गुरो: प्राप्त सान्निध्ययोर् नैष्ठिक ब्रह्मचारिण:
गुरुगंगारमीपस्थ विश्वाश्रमवासिना:
अनेनैव तु ...
नित्यशान्तेन योगिना
भगवता च दृश्यैव

हे प्रभो । स्तुतिरीति शत्रके पतित: कृतोऽसि माये रहेगी ही । ॥ ... आशीष ...

ईश्वर: सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥
तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ॥

... तेन

अत्र तमेव शरणं गच्छेत्यनेन स्वातन्त्र्यमनुप्राणितं उपदेष्टा । ते तम
अत: ... जीवात्मन: न चास्य शरणागतेः सर्वेश्वरोऽपि किं किञ्चिदुप
करोति अपकरोति वा । न चास्य जीवस्य सर्वैश्वर्यसम्पन्नेश्वरतादात्म्यं प्रत्यभि-
ज्ञानत: ~~अस्य~~ शक्ति: स्वातन्त्र्यं सङ्कोचमेति प्रत्युत सर्वकर्तृत्वरूपेण विकास
... इति ... किं करणीयं ... शरणागते: फलम् ॥
... सर्वकर्तृत्वरूपं स्वातन्त्र्यमेव ... मुपदेशत्वर्जुनाय ...
... भगवते । ... आयेतु ...
... प्रतिज्ञातो ... [illegible]

... हिन्दू विश्वविद्यालय के महामहोपाध्याय श्री अभिनवगुप्त पाद के विषय में ... दिन की गोष्ठी रखी गई है उसमें आप लोगों को गुरुदेव सहित निमन्त्रण करने का ... इस बात से मुझे गुरुदेव का दर्शन हो जाएगा अतः गुरुदेव कृपा कर आने का विचार निश्चय करें । आप दोनों साथ आएंगे तो बहुत खुशी की बात होगी और श्री अभिनवगुप्त के उद्देश्य से ऐसा करना आप लोगों का कर्तव्य होता है। श्री दीनानाथ जी जब से गये तब से उनका कोई पत्र नहीं आया जब कि मुझे कह गये थे कि जाते ही पत्र लिखूँगा । तो उनसे कहियेगा मेरे ऊपर दया करें ।

अब विशेष क्या लिखूँ । आप दया रखेंगे आपका वही आचार्य रामेश्वर

[illegible]

967

प्रभो! परमकल्याणि! प्रातिभज्ञानदायिनि!
नमस्तुभ्यं सदा कुर्मो वयं तव कृपेक्षया ॥

आश्रमे पत्रमेकं ते प्रेषितं तु श्रीमया। द्वितीयं ... मल्लाविनोल
ततो वै दुःखमते। चित्तं कारणं ... वाचे कुशलतं ... तत्वं पत्रलेखनम् ॥

पुत्रौ त्वया प्रश्नमन्तोतं ... द्रष्टव्यः समनो योगात्कृपादृष्टिं विधायच ।

प्रभो! समुत्सहे तत्वं ... इष्यते ।
दैवाधीनं जगत्सर्वं ... ॥

पादेभवेत्कुरो दृष्टिः कृपायाचभवितो तव ।
तदावश्यमहं द्रक्षे श्रीगुरोश्च ...

प्रत्यक्षज्ञानवतः ... वानेनावि ...
क्रियाभवन्ति सकलाः ... ॥

प्रयोजनवशी भूतो ... विवशीकृतः
चेष्टतेऽयं जनः सर्वो ... ॥

श्रीगुरोः कृपयापूर्णत्वद्दयाप्रभयान्वितः ।
वसन् कुत्रापि देशेऽहं स्वानन्दामृतनिर्भरः ॥

तथापि दर्शनाकाङ्क्षी सदैवास्मि ...
किमत्र कारणं चेति ज्ञायते नाहि। ...
केवलं ज्ञायते ... ॥

अस्तु यद्वा भवत्येवं, कृपा ...

297. 61
13

हित्वाग्रहीत्वा न भवेत्कु कोपि
[illegible], [illegible] मूर्ते ।
हानुग्रहोर्, [illegible] तत्र-
[illegible] शून्यः ॥

नित्य प्रसू [illegible]
नित्यं विभुं [illegible] शिवम् ।
तस्याभि [illegible] तथा भवत्त्वं
नित्यं स्वरूपं न जहाति नित्यः ॥

यस्मान्महः सर्वमहो निदानं
सूर्यादिभूम्यन्तावभास [illegible] ।
तस्मै नमो मे महसां प्रकाश-
कर्त्रे च, कालाद्यतिगाय स्वस्मै ॥
निर्धूतमोहं स्वमहिम्नि राजे
स्वानन्दपीयूषरसे निमग्नः ।
विद्यापि मायापि न भाङ्गभूता-
शक्ति, र्यया भाति शिवो जगच्च ॥

श्रुतं न किं किं ! न कृतं च किं किं !
दृष्टं न किं किं ! न च तावि मापि । प्राप्तम्
विस्मृत्य देहं निजधामनिष्ठः
पूर्णः सदैवैकरसोऽस्मि तृप्तः ॥
प्रभो ! त्वया या प्रतिभा प्रदत्ता
सैवास्ति मे सर्वसुखप्रदात्री ।
अतः सदा त्वत्स्मरणप्रसक्तो
जानामि विश्वं न सुखं न दुःखम् ॥

तुभ्यं नमो मे महतापि वाचा
स्वानन्दशक्त्यैधृतविग्रहायै
श्रीसारिकायै विमुक्तिप्रदात्र्यै
कुर्यां नमो भीश्वरप्रदात्र्यै ॥

स्थितः सदैवास्म्यहमद्वितीयः
विभाति मय्येव शरीरिते यत् ॥
शरीरभावात्प्रभवन्ति भावा-
भवान्ति नैवैकरसमूढबोधाः ॥

यो वेत्ति सर्वं तनुते च सर्वं
सर्वं करोति स्वयमक्रियः सन्
पश्यंश्च श्रृण्वन्न च मुह्यतीह
तस्मै नमो मे गुरवे शिवाय

इत्येवं वाङ्मयी पूजा गुर्वयोः पादयोर्मम ।
[illegible] ॥

निराकृत्य तमो गाढं हृदि यो मे निरन्तरम्।
प्रकाशयति रूपं स्वं तं वन्देऽहर्निशं गुरुम्॥

(७)

श्री गुरोर्वन्दनं शब्दैः करोमीत्यं मुहुर्मुहुः।
हृदयं मे विजानाति महिमानं न वाग्मियम्॥

(८)

नासीदृशस्त्वं न च तादृशस्त्वं
त्वं कीदृशोऽसीत्यनुयोगशून्यः।
त्वं मादृशोऽसीत्यपि नैव वक्तुं
योग्योऽसि शम्भो! त्वमसि त्वमेव॥

(९)

'इति'

एवमाभिः स्तुतिभिर्नित्यं पुनर्देवी मुहुर्मुहुः।
याचे कृपां तया सतां दर्शनं येन मे भवेत्॥
अस्मिन् हस्ते मनाग् बाधा वर्तते साम्प्रतं मम।
येन तु लिखितं नैव स्वहस्तेन दलं मया॥

तात्पर्यमनु भजन्ति भवन्ती । नाहं परमशिवे तद्
भिन्न स्वरूपश्चैऽस्मि दाशैवार पूर्व पूर्व गुरुदेवैर्वा
कथं न स्वरूप मनुभूयते इति तात्पर्यं वा । प्रमा
वेशदशा तारतम्येन तु देहादि प्रमातृ भाव मुपेयुषो
भगवतः सैव परमाशिवत्व माधीनो विश्वा
त्मकस्य विविध रूपतेव आयाति, भाति नित्यमे
व, अत एवं "सदाशिवादि भेदात्मा" इत्यादिवा
क्ये विकल्पता रहस्यं सिद्धान्ततया प्रतिपादितम् ।
एतदेव च आह वैव " ... "
इत्यनेन स्वात्मानं नमस्कृत्य " आत्मा मम
भव भक्ति सुधापानयुक्तापि सन् " इत्य ~~...~~
भी, लोक पात्रो ... धूसर त्वमप्यनन्तोऽसे
बाधाति प्रतिपादितम् । यथा भयाद्युक्तम्
स्वरूपं सर्वदैवास्ति निर्मलं चैकरूपकम् ।
अज्ञः पश्यति मूढत्वात् स्वरूपेऽपि विरूपताम्
अनाभिज्ञात स्वरूपस्य ~~...~~ उपायतामुपयान्ति सर्वो पायो
तत्र किंव कथम् । अभिज्ञात स्वरूपस्य तु सर्वे पदार्थाः
सर्वावस्थाः सर्वाणि कर्माणि सर्वं चैतत् ते उपायस्वभा
वभूता एव भवन्ति न तैः ते किमप्यर्थ ... वाति
कारयन्ति च भोजनादि ... वते । किमधिकं
विदित स्वरूपं परमसमानतया ... मेवाहरति
कृपया श्रीगुरुस्तोत्रं १० वा लिखित भा.पी. द्वारा
प्रेषणीयम् भवता: ... स एव सा. मा:

श्रीगुरो: पदाम्भोजे प्रणतिभ्रमरी मम
करोतु वसतिं नित्यं रसास्वादन लोलुपा ॥
तत्त्वात्मे विग्रहं नौमि देवीं श्री स्वामिकां सतीम्
प्रणतार्ति विनाशाय यज्ञागाती वसेदा ॥
प्रभो प्रभात्मिकां स्वीयां हृदये त्वां समाश्रितम् ।
उपायेह विनाशाय प्रार्थयेऽहं महानिशम् ॥
भाति त्वं सित्वमेवैका सर्वदा भोगमोक्षयोः
सदाभिन्नापि ... यतो भासि स्वभावतः ॥
अन्ये भोगं विना मोक्षो न भात्येव कदाचन
अतो आभास्य संसारं मोक्षं ~~...~~ त्वं भासयसि प्रभो ?
प्रतिभाति हि वस्तूनां शुद्धसंवेदनात्मकम्
संकुचत्वादिकं तेषु विकल्पोऽहं स्वभावतः ॥
वस्तुतः स्वप्रकाशस्य प्रतिभानं सदैव हि ।
अन्तर्मुखितया भाति शुद्धोऽहं प्रत्ययात्मकम् ॥
समस्त भाव प्रवाहं च भावय
यतः समुद्भूय विभान्ति यत्र
अहं स नित्यो निरुपाधि रस्मि
विभूतयो मे परितः स्फुरन्ति ॥
न तत्त्वातत्त्वयो-
र्भेद इति वृद्धेभ्य आगमः ।
अतत्त्वमिति मन्यन्ते तत्त्वमेव विचारितम् ॥

श्री विद्याधिगत पादुकायै
श्री शम्भु सेवार्थ गृहीत कायै ।
श्री रामेश्वरस्याखिल बोध मूर्त्यै
देव्यै नमः सर्वदसात्विकायै ॥
(१)
श्री व्यादि नाना विध शक्ति धात्र्यै
श्री शम्भु वामाङ्क शुभासनायै ।
श्री शारिकायै करुणात्मिकायै
देव्यै नमो मे शिवता प्रदायै ॥
(२)
श्रद्धा कृतायै सिव पादपद्मे
आध्यात्म विद्याधिगता परा तैः ।
त्वय्येव भक्त्या तु सुरै मनुष्यैः
रैश्वर्य माप्तं सुखदं समृद्धम् ॥
(३)
श्री शारिके! त्वं जगतां प्रतिष्ठा
ज्ञानस्य धर्मस्य शुभस्य चापि ।
त्वं सेविता येन हृदा मनोज्ञा
प्राप्ति तेनापि सर्वेश्वरता नृलोके ॥
(४)
कारुण्यपूर्णे नयने त्वदीये यदैव यस्मिन्पततः स्वभावात्
तदैव तस्यानुगता भवान्ति यशःशान्ति दिग्पाननु रिद्धता...
(५)

श्री

योगाग्निवृत्त्यै निजभानकर्त्र्यै
स्वात्मावभासार्थविमर्शशक्त्यै ।
देव्यै । चिदानन्दमयात्मिकायै
तुभ्यं नमो मे परमार्थमूर्त्यै ॥

नित्यानन्द संस्कृतवि-
द्यालय पटसार
ग्रा.पो. पटसार
भाया- हसनचौक
मिले
दरभंगा

अयि दासीकृतानन्तशक्तिशक्ते! प्रभो!
आसादितभवत्पर्यङ्कविज्ञाप्ति भवतीं पूर्णतासंवलितां समासादितस्वरूपां सातिशयश्रद्धासमन्विताञ्च, परं यदितोऽहं विभामि।
तत्र भवत्याः पत्रे स्थम "काश्मीरोऽपि यदपि दर्णोऽपूर्णतां व्यापयन्नीयहं नापूर्णतामङ्गीकरोमि अपि तु तत्रापि पूर्णतामेवालक्ष्यामि" इति वाक्यं मह्यं रोचते स्वदते, आह्लादयति च माम्।
भगवति! भगवतस्सदाशिवे विद्यमानं जगद्बीजमेव, वेदमङ्कुरितं पल्लवितं जगदास्ति मायिकपदवाच्यम् तर्हि किं किं न सम्भवति सति-भेदे। पत्रे स्थिताः भवतीपत्रलेखनी प्रारब्धवती ने तत्र भवत्याः स्थितिः स्थिराऽति-रूपदत्रपत्रेऽपि यतोऽत्रागमं वाक्यं ने स्व-रूपतां वीनीविक्रमिव प्रतिभाति। तथाहि-
परमोच्छिति परमाशिवाभिन्ने भगवति श्रीमद्
मलदेव...

पूजित शारदाम्बा...
प्रणमन् प्रणताऽर्त्त्या श्री देवी वन्दे किमपारम् ॥

काश्मीरिको त्वं ननु शारदाऽसि
श्रीरेव सन्ती भुवनेश भवानी ।
त्वं देवि! सत्यं हरिपर्वतस्था
जनस्य दुर्गातिहरी च दुर्गा ॥

श्री शारदापीठवराधिराज्ञी
रुद्रो हि शैव स्थानेऽपि महेश्वरस्य ।
वागीश्वरी सर्वविधान दक्षा
हे सारिके! किं स्मरसीव न त्वाम् ॥

यथारुचं त्वं प्रकटं प्रभावम्
भवानि शीघ्रं कुरुमय विलम्बम् ।
ज्ञानमूर्त्तांशु प्रभया समन्तात्
तमोऽज्ञानं क्षयं कुरु त्वम् ॥

किं त्वामहं वाचि पराप्रसूते
पादौ नमामि सुखं शयानः ।
ऐश्वर्यशक्ती भवती भवानी
सर्वप्रदा ऽस्तीति न मेऽस्ति चिन्ता ॥

देवाधिदेवं प्रणमन् गुरुं तं
श्रीलक्ष्मणं लक्ष्मण एव लोकः । लक्ष्मीवाने
भूतस्त्वं हि तं प्रणमन् प्रविशोऽस्मि
एकाक्रियावश्य फलं विचित्रम् ॥

यावत् प्रयोगानि पशुप्रकृष्टः
कर्मासतः कर्मफलं शङ्की ।
तावज्जनते स्तेन निकपयत्नम् ... "नाले, ति धुर
परोक्ष कथं लिख्यते मात्म रूपम् ॥

[illegible]
...कृत तन्त्र में कोऽपि कर्यः । सोऽयं स्फोट जिज्ञासितो भवत्या तत्र काऽपि
किञ्चिदिदानीम् – अयं स्फोटवादः पुरातनः शब्दनित्यत्ववादिनां महतां
वैयाकरणानाम् अस्य बहुषु ग्रन्थेषु व्याख्यानं खण्डनञ्चोपलभ्येते ।
वैयाकरणैः अष्टौ स्फोटाः स्वीकृताः यथा वर्णस्फोटः पदस्फोटः
वाक्यस्फोटः एते चापि व जाति स्फोटः इत्यादि विध इति पद जन्य
अखण्डपद स्फोटः अखण्डवाक्यस्फोटः इति भवन्ति अष्टौ तत्र वर्ण
स्फोटस्यार्थः प्रकृति प्रत्ययौ वाचकौ न तु वर्णाः वाचका इति तत्र वा
क्यस्फोट एव मुख्यः अयं मध्यमायां योऽन्तरांशः स इति परवर्ति
वैयाकरणैर्नागेशादिभिरङ्गीकृतम् । वैयाकरणाः अर्थस्य शब्दस्य
तयोर्मयसम्बन्धस्य च नित्यत्वमङ्गीकुर्वन्ति । अत एव चिरतः शब्दस्य
बौद्धशब्दार्थादि स्वीकृत्य प्रकटयन्ति । अर्वाचीनैः परादय चत्वारो वाचो
ऽपि स्वीकृताः । एतेषां मते शब्दार्थयोः भेद एवाभिमतः (वस्तुतस्तु एकस्य
कस्यचित् शास्त्रस्यापर शास्त्रं परिष्कारं करोति । विचार्य ... तु सर्वत्र
देवोऽस्त्येव गुहेरष्यास्य शान्तेः) सोऽयं पुरातनैः परा वाक् मूलचक्रस्था
पश्यन्ती नाभि संस्थिता हृदिस्था मध्यमा ज्ञेया वैखरी कण्ठदेशगा । वैखर्या हि कृतो
नादः पश्यन्त्या व्यज्यते । मध्यमया कृतो नादः स्फोटव्यञ्जकः उच्यते ॥
अन्ये तु प्रक्रिया आविष्कृता यथा हि प्रथमं परमेश्वरस्य सिसृक्षयाभिव्यक्तिः
शक्तिः मायया तस्याः बिन्दुरूपं त्रिगुणं प्रधानापरपर्यायमुत्पन्नम् । तस्मात्
तत्र बिन्दौ योऽचिदंशः स बीजम्, सम्मिलितौ चिदचिदंशौ नादः, बिन्दौ
चिदंशः नादान्तर्गतः सोऽपि बिन्दुरित्युच्यते । आचिद्भेदेन शब्दार्थो
मयसंस्काररूपा नामरूपात्मिकाऽविद्या उच्यते । एतस्माद् गुणत्रयात्मकाद्
बिन्दोः स्थूलपदार्थावस्थाविशेषरूपं शब्दब्रह्म परनामधेयं नादमात्रं
उत्पद्यते । एतदेव जगदुपादानं ख-परा शब्दो नोच्यते एषा परा सर्वगतापि प्राणिनां
मूलाधारे संस्कृत पवनेनाभिव्यज्यते । विवक्षारूप्या संजातः प्रयत्नः मूला
धारे संस्फोटः । शब्दब्रह्मेति परे ... ध्वनिरूपार्थकौ शब्दौ ।
तदेव शब्दब्रह्म नाभिमार्गेण तेनैव पवनेन नादरूपेणाभिव्यज्यते
... तु जागर्त्येव भवती ... देश ... वायुना व्यक्तं प
सम्बद्धमयः अन्तरांशः स स्फोटः वर्णाभिव्यञ्जकः वाचकः
मन्यते । ग्रन्थव्याख्याने मूलकारस्य टीकाकारस्य च कोऽपि कोऽपि
भेदो भवति नाहि टीकाकाराः सर्वत्र मूलकाराभिप्रायं व्यञ्जन्ति
... प्रदर्शयन्ति ... इति वेदितव्यम् ।

593 590

त्वद्दर्शनात्‌ शान्तिमुपैति लोको-
हित्वा मलं चित्तगतं समस्तम्‌ ।
त्वत्पादपद्मस्य रजांसि रोगान्‌
छिन्दन्ति सर्वान्‌ हृदयेऽर्पितानि ॥
(६)
सौभाग्य सम्पत्तिचयेन लभ्यं
त्वत्पादपद्मच्युत धूलिमात्रम्‌ ।
येन केनापि ध्रापि ललाटे धृते च
येनापि केनापि धृते ललाटे
तेनापि । सिद्धिस्तु परात्परापि ॥ प्राप्ये
(७)

त्वं शारिके । मादृश सेवकानाँ
हृत्वा, हृदिस्थार किल कामचेन:।
भुक्तिप्रदा मुक्तिविधानकर्त्री
सर्वप्रदे । मङ्गलमातनोषि ॥
(८)
त्वत्पादसेवारणाद्धाव ।
शब्दब्रह्म विजृम्भितम्‌ ।
यथा तेया स्तुतासि त्वं
कालिपि मात्र किंचन ॥

567 865

श्री गुरवेभ्यः

नमस्तोद्देशिकेन्द्राय शिष्यमङ्गलकारिणे ।
गुरूणां गुरवे तस्मै
लक्ष्मणार्येश्वराय मे ॥
यदीयैश्वर्यविप्रुड्भिर्भासिता मादृशा जनाः
स्वालोक शीतानि विश्वानि
यथेन्दुं भासयन्त्यमी ॥
गुरवो बहवो भूता भाविष्यन्ति परे पुनः
पूज्यो मे लक्ष्मणो देवो
गुरुरेको विलक्षणः ॥

[illegible] शालिन्यै गुरुसेवैककारिणे
[illegible] स्वरूपिणे श्रमार्यै मे नमो नमः ।
[illegible] न खल्वोक्ष्यो
[illegible] कालिकः ।
[illegible] श्रयेऽवाति [illegible]
[illegible] प्रभो ! त्वां श्रये हृदि ॥ १
[illegible] ति स्मरणेनैव
किं भवतीति वेद्मि न
[illegible] गुरुतः पृथक्
[illegible] पश्यामि सदैव ते ॥ २
[illegible] नागमने क्वापि
[illegible] विद्यते हृदि ।
[illegible] इव [illegible]
[illegible] जीवितः ॥ ३
[illegible] नास्ति मे हेयं
[illegible] किञ्चन साम्प्रतम् ।
[illegible] तथापि [illegible]
[illegible] प्रभो त्वय्येव मे ॥ ४
[illegible] त्वदीयान्नयस्तु
[illegible]
[illegible] प्रीतिस्
[illegible] भवतात्प्रभो ॥ ५

58B

L91

[illegible]

श्री कृतार्थः भवतात्? पत्र प्राप्यानन्तरं श्रीगुरुस्तवने नमस्कारं करिष्यामि वस्तुतस्तु

येयाहं प्रभया देव्या प्रेरितः प्रतिभान्वितः।
गुरुस्तुतौ निमग्नोऽस्मि तां त्वां नौमि सदा प्रभे॥ (१)

आद्योच्चारणमेवाहमुपदेशः प्रकीर्तितः।
उपदिष्टो यया भ्राजे देवीं तां नौमि सात्त्विकाम्॥ (२)

मनोबुद्ध्याद्यगम्योऽपि गम्यो यत्कृपयैव यः।
तं वन्दे लक्ष्मणं शम्भुं गुरुं गुरुतया स्थितम्॥ (१)

निग्रहादि चतुष्कृत्यं यो हित्वैव सकृत्स्थितम्।
शक्त्यनुग्रहरूपेण लक्ष्मणोऽस्ति नमामि तम्॥ (२)

गुरवे ज्ञाननिर्वाण
परमङ्गलमूर्तये।
रवीन्द्वग्निनेत्राय – रवीन्द्वग्नित्रि-
लक्ष्मणाय नमो मम नेत्राय (३)

विज्ञातुं स्वं स्वयं येन
कृत्वा विश्वावभासनम्।
प्रत्यभिज्ञापितश्चाहं
तं वन्दे प्रभुमीश्वरम्॥ (४)

श्री त्वत्कृपयैवाहं, लब्ध्वा लब्ध्वा गुरुं सदा।
आनन्दमाधिं भविष्यामि नान्यो देवो मम प्रभे॥
शक्तिमेकामहं मन्ये प्रभे! त्वां प्रातिभामिकाम
सम्प्रदाय चेत् किमन्याद्धि प्राप्रण्यमेवाशेष्यते॥
कारुण्यपूर्णे! भविता कुतश्चेत्
स्याद्दर्शनं मे चरणाम्बुजेऽस्य।
श्रीमद्गुरोः स्तोऽपि च सर्वकार्य-
देव्याः सदा मङ्गलकारिकार्याः॥
यदेव तुभ्यं वदितव्यमेतत्
भूते, भविष्यत्यपि निश्चितं मे॥ — मे माता भगवती यः
माता, स्वतन्त्रो। न हि कोऽप्यन्यः
कर्ता विधाता जगति स्वतन्त्रः॥

गत्यर्थात् कीर्ति कर्ता
शिवोऽपि शक्त्या विवशीकृतोऽयं
बिभर्ति रूपं त्रैविध्यं विचित्रम्।
पुनश्च कारुण्यदृशा भक्तिः:
पातित्वमाप्नोति निजस्वभावम्॥

उत्तरं त्वत्प्रेरितं वक्तुं प्राप्तं मामद्य नरप्रभे।
जिज्ञासा विद्यते [illegible] श्लोकार्थस्य तव प्रभे॥
शीघ्रं स्वबुद्ध्या [illegible] यथार्थः
सत्यं विश्व [illegible] तेन सन्निधौ तम्।
संप्रेष्य [illegible] तत [illegible]
सैरवं लक्ष्यं [illegible]

[illegible]

शिवो विजयते ।

परमादरणीये । प्रभे ।

अद्यैवेदानीं भवत्याः पत्रं प्राप्तं
मम स्वान्ते । नैश्चिन्त्यतां प्रापयितः
भवत्याः पूर्वपत्रं वाराणसीतः मत्-
निकेते आगतमासीत् तस्योत्तरमपि
मया लिखितं । तस्मिन् निवेदितं श्रीमत्याः
लाहोरतः यः अपि पत्रं प्रेषितं, किन्तु
लाहोरतः पत्रोत्तरमपि मया न प्राप्त-
मिदं, नैव भवत्याः पत्रोत्तरमपि ।
अतो मे मनः चिन्तितमिवासीत् ।
इदानीं मन्ये त्वरानुपस्थितौ
भवतीनां क्षमापि तथा मे रहीत-
ते भवेत् ।
अस्तु पत्रं लब्ध्वा पुनर्भवत्या अवश्य-
मेतत् वदामि । अन्यदहं संयुक्ते-
नरस्तने [illegible] यादयामि ।

58 A

L92

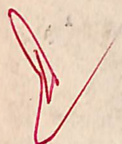
विद्वत्ता बहुविज्ञता सुकविता धारम्यातृताऽऽचार्यता
सर्वैश्वर्य मनोहरा ... येऽन्ये गुणा वा गुणाः ।
तान्मन्ये मनुते तृणाय ... त्वत्पादपङ्कोत्पल-
मोदास्वादनगाढमग्नहृदयो धन्यः प्रभोऽयो प्रियः ॥

2
अर्थस्य वञ्चनम् ... त्वामेव ... नहि ... तोऽस्ति ।
यतोऽभिधेय ... वितरत्वां
भूवतस्य ... सम्भवेऽजलि ॥

येनैते गुणाः सर्वगतोऽसि ईश्वरोऽसि
साक्षात्कारदैन्यविनाशकारी ... ।
त्वं चापि विद्यो मम शान्तिश्चावते तो-
याग्रां पुनर्दुःखफलानि काम ... ॥
सत्यं प्रभो वाच्मि न शाठ्यमत्र (कपटोऽस्त्री व्याजदम्भोपधयश्छद्मकैतवे । कुसृतिर्निकृतिः शाठ्यम् इत्यमरः)
न चान्यथाऽहं ... भावनीयः ।
... सर्वशून्यः सहसा भवामि
यदैव कश्मीरमहं स्मरामि ॥
आसमुद्रात्तेऽनुचरो यथाऽहं
तथैव सम्प्रत्यपि नास्ति भेदः । ? X
किन्तु प्रभो त्वत्कृपया त्वदीये
ने मूर्तिमनो ... सितम ॥ X
प्रभोऽस्य नूतनो भवोऽयमेको
मयानुभूतोऽनुभव, त्वमेनम् ।
त्वदर्शनेच्छः ... मानतोऽहं
पश्यामि सर्वो भवतीऽप्रस्तोत ॥ X
प्रभो हृदि स्फुरन्ती त्वं देवेश्यपि नाभ्यसे ।
अतस्त्वदाज्ञया सर्वं कर्तुमस्मि समुद्यतः ॥
... सर्वलोक ... प्रकाशं कार्य करोति
... त्यजेत ... +

नूतनः नूत्नः नवीनः

... नां महत्वं ... भवते । ... स्फोटः ... वर्ण ... तन्त्रवार्ति ... परवर्ती ... शब्दस्य ... शब्दानाम् ... ध्वनिनां ... वाचोऽ ... सर्वत्र ... मूल ... वैखर्या ... प्रदर्शित ... शब्दो ... नादमानं ... प्रयत्न मूलो ...



तत्र सम्मेलनानन्तरं काश्मीरदेशस्य श्री बोधिसत्त्वस्य
अधोमहं मञ्जुश्रियं ध्यायामि । इन्दुवदनं ध्यायामीति
हे वत्स । विमलं वदति । यथा कार्यक्रमं पुनः
भवतीं सूचयिष्यामि । कृपया हे तत्स्वयोगे
स्थापयतु भवन्तु इति

भवन्तो ऽत्र स्थिताः

पद्मस्य दर्शनार्थं श्री देव्यै अपि भक्तानां नानाविधकीर्तनाय
आगमनोऽपि सम नव्यावरणाय एवेति ।

एकः श्लोकः ईश्वरीस्तुति ।

आद्या शक्तिः प्रबुद्धा स्फुरति च सततं स्वात्मसंवित्स्वरूपा
येच्छाज्ञाने[2] क्रियायां प्रकटितमहिमा, स्वात्मजा ये विरूपा ।
नाद, बिन्दु योऽपि व्यवस्थितस्था त्रिगुणपदविता कुण्डलिन्यां नितुर
मूलाधाराग्रविष्टा आनन्दामृतजा ज्योति आत्मविश्वस्वरूपा ॥
स्वामी जी का प्रथम श्लोक है—
स्वाधारे कुण्डलिनी प्रतिबोधितमहादेव्यं तेजः स्वरूपा
षट्चक्रं भेदयन्ती गतिकृतं मध्ये व्योम मार्गं दधाना ।
प्राणेशं भेदयन्ती दशशतकमले पर्यायवेशं स्थिता या
विश्वानन्दप्रवाहैः विलसतु भवतां कौलिनी कुण्डली सा ॥
आपका निवेदन यह है कि अब जो स्वामी जी ने कहा है
कि हम तो आपके आमन्त्रण पर भी ... जो ... हैं ।

अभी तो आश्रमेत तक यहां ही रहने का समाचार है परन्तु आगे होगा कुछ कह नहीं सकता।

मैंने सुना है श्री गुरुस्तुति का हिन्दी अनुवाद कर दी हो धन्यवाद।

और पूर्ति प्रयाग द्वारा कि हिन्दी में नहीं होगी।

प्रभु भी अब मैं [illegible] को पूर्णरूप से सर्वतः समझ गया हूं और अनुभूति भी कर लिया हूं अब उसे लिखने के प्रयत्न में हूं परन्तु आजकल अकेला कुछ कर नहीं पाता आलसी बना रहता हूं लिखने में भी हूं इसीलिए कुछ कर नहीं पाता।

वहां की स्थिति कैसी है मुझे पत्र द्वारा दे दो कि मैं आ नहीं सका।

श्री स्वामी जी को नमस्कार कहना

श्री देवी जी को नमस्कार

श्री जौहरी जी आपके लोगों को नमस्कार करते हो।

गा. श्री.

57A ८९ वि २०२२

३०. १९६५

अयि मम सर्वप्रभो ।। श्रावे ।।

भवत्याः पत्रं प्रतीक्षामतीत्य मया लब्धम्, नैतदुचितं भवत्याः मनोरथपूरणम् अस्तु ।

श्री स्वामि पादारविन्दानन्दं पत्रं प्राप्तम् । भवती नगरे ते पर्यटनमेव मुद्रापञ्चकपूर्णं ददाति । एतदस्तु ।
मया चित्ता कुण्डलिनीप्रकाराः ।। निबन्धो लिखितः तत्र सन्ति श्लोका अपि — एकः श्लोकस्तेऽत्र प्रमाणयति

प्रभो सर्वार्थतत्त्वज्ञ ।
किं तद् यन्त्र विमर्शय ।
स्फुटं कुण्डलिनीतत्त्वं
त्वमद्य प्रकटीकुरु इति ।

श्री गुरोः भवतोऽपि निबन्धा अवलोकिता । मह्यम् अत्याधिकं मत्तं तेऽरोचन्त । इदानीं प्रयागं भगवन्तः शान्ति स्वामिपादाः । किमिदानीं विरचयामि किमपि मनसि न ज्ञायते देवं तत्र द्वयम् । भवत्यौ ज्ञातवत्यौ इति खिद्यति मनः । अन्यत्सर्वं शोभनं मे विद्यते ।
नाहं विश्वविद्यालये किमपि कार्यं सम्पादयामि यथापूर्वमेवाहं निश्चिन्तः अस्मि ।

57A 290

[illegible]
माल रोड
मसूरी

परमादरणीय प्रभो ! श्री सादर नमस्कार ।

अघटितघटनापटीयसी भगवती की अनुकम्पा से आज कल मैं यहाँ आ गया हूँ । जो कुछ हो जाता है उसे स्वीकार करता रहता हूँ । कार्यक्रमादि तो हरद्वार में था ।

पूज्यपाद श्री गुरुदेव का जन्मोत्सव व आप लोगों ने सानन्द मनाया होगा । जब मैं आप के पत्र में पढ़ा था कि "श्री स्वामी जी के कहने से आप आए हैं" तभी मेरे मन में आया था कि नहीं तो नहीं जाऊँगा । आपको जो मैं पत्र लिखा था अपने आने के विषय में उसमें भी श्रीगुरुस्तुति इस वर्ष यहीं मनाली जायेगा ऐसा लिखा गया था तभी मेरे मन में आ गया था कि मैं नहीं जाऊँगा जो ऐसा लिखा गया परन्तु वही हो गया आपकी इच्छा रहते हुए भी नहीं कुछ होता है नहीं इस पर भी कुछ से कुछ होने लगता है ।

अस निवृत्ति स्तवाष्टकामें

करोमि नाहं निज लाभतुष्टः।
न सम्मुच्चाता निज रूप भावे
विकल्प कल्लोल लयानि गम्यम् ॥
(९)

X समस्ताहित पञ्चोऽहं दयावानुत्तं त्वरित
निजानन्दानि मग्नोऽपि त्वत्प्रभाविवशीकृतः ॥

सर्वतः परिपूर्णा या शक्ति मां पातु सर्वदा।
दिव्यौघ (द्योतसमा) प्रसरा देवी सर्वा का भुक्ति मुक्तिदा ॥
सदा सन्निहिता भद्रे प्रभात्वं पाहि जित्वरी।
यत्प्रसादं विना मे क्वापि तिष्ठं भाति च किंचन ॥
प्रभायै गुरवे चापि रोचते यद यदेव तु।
तदेव स्वदते मह्यं शिव शक्ति प्रसादजम् ॥
यदनुभाति रेवास्य परमानन्द भासिका।
धन्या सा कृतार्थः सम्मुखं त्वं विराजसे ॥
श्रीमद्भगवतं भद्रे प्रेषये ध्याम्यहं पुनः
तावत्काले प्रतीक्षस्व यावत्काशीं न याम्यहम् ॥
अद्यापि न मया लब्धा प्रेषितः सद्गुरु स्तुतिः
आगामि ष्पोतेनाग्रासि संशीतिः काचि मानसे ॥

स्वात्मन् स्वस्मात्स्वयं स्वस्मै
विश्वभान विधायिने।
नमः श्रीगुरवेऽनन्त-
ज्ञातृज्ञेयाव भासिने ॥
(१)
विश्वाधारं निराधारं
रूपं येन प्रदर्शितम्।
नमः श्रीमहसे तस्मै
सद्योमोक्षप्रदायिने ॥
(२)

पुनः प्रभो नमस्तुभ्यं सदा दिव्यै पुनः पुनः
नमः स्वात्माततत्तस्मै गुरवे सर्व साक्षिणे ॥
क्षेम पत्र प्रदानेन कर्तव्योऽयं निजो जनः
कुशली कुशलाकांक्षी काले काले सदैवाहं
सर्वेश्वरी सर्वमयी समन्तात्
भाति प्रभे त्वं निरवग्रहैका।
बद्धो न मुक्तो न च जीव ईशः
किन्तु प्रभे! त्वत्कृत एव सर्वः ॥

तावको रामेश्वरः

जगन्नियन्त्र्यै जगदात्मिकायै
जन्मादि षड्भावविभासिकायै ।
शर्वस्य शक्त्यै सकलार्थसिद्ध्यै
नमः प्रभायै निजभानदायै ॥

(१)

एकान्ते निरुपद्रवे, कलकले-संघे जनानामथ
एकैवासि सदा सनातनसखी भिन्नेष्वभिन्नाश्रिता
न त्वं देवि! कदापि यासि विकृतिं, सर्वं स्वरूपं तव
भावाभाव विभासनैकचतुरे! त्वं स्याः प्रसन्नाद्य मा ॥

(2)

या, नानेव विभाति भूतभुवनोद्भवाकार[illegible] सती
माया वै जगदीश्वरी भगवतो विद्यापि मुक्तिप्रदा ।
सैवा त्वं निजरूपभासनपरा सर्वार्थसंपत्करी
संशुद्धापि विभासि विश्वविभवा वागीश्वरी मे प्रभे ॥

(3)

एकान्ते साधिकायास्ते भविष्यत् कर्मसंचितम्
फलं, विना शिवं किं स्यान्नैकान्तत्वं शिवे सति
प्रभया न विना भाधाद् यथा देवो महेश्वरः
विना शिवं तथा नैव भवेद्देवी प्रभा प्रभा ॥

(४)

[illegible] संक कुरु [illegible] ॥

श्रीगुरोः कृपया यत्र सौन्दर्याधायिका प्रभा ।
राजते सततं, तत्र सर्वमेवास्ति सुन्दरम् ॥

(१)

त्वयैव भास्यते किञ्चित्कदाचित्सुन्दरं पुनः ।
तदेव भास्यते काले ऽसुन्दरं बुद्धिभेदतः ॥

(२)

मोक्षोपयोगिनी बुद्धि र्ज्ञानशब्देन मे मता ।
त्र्यंकशास्त्रे स्वभावो मे शिवो मोक्षपदाभिधः ॥

(३)

ज्ञेयमेयं च मे रूपं न तत्त्याज्यं कदाचन ।
हेयोपेयमतिस्त्याज्या स्वात्मावेशानिरोधिका ॥

(४)

ज्ञानं क्रियात्मकं नित्यं क्रियाज्ञानात्मिका तथा ।
भाति, स्वरूपतो ऽभिन्नं ज्ञेयाज्ञेयपदाश्रितम् ॥

(५)

वस्तुतो ज्ञेयतो मुक्तो जडः संकुचितो भवेत् ।
यथा ब्रह्मविदां ब्रह्म जडकल्पं सुकल्पितम् ॥

(६)

शिवो ऽविकल्पितः स्वच्छः सर्वभावसुनिर्भरः ।
स्वात्मा गुरुस्स्य, मुक्तौ शक्तिः शिवः साक्षादसंशयम् ॥

(७)

आत्मा यत्रात्मनैवायं सर्वरूपेण भासते ।
उपादेयं च विज्ञेयं हेयमेवाथ वा भवेत् ॥

(८)

ज्ञानज्ञेयपदयोरर्थौ गीतायाः त्रयोदशाध्याये "अमानित्वमदम्भित्वं" ६ श्लोकादारभ्य "अज्ञानं यदतोऽन्यथा" ११ पर्यन्तं तथा "ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि" ... "हृदि सर्वस्य विष्ठितम्" इत्यन्तं १८ श्लोकान्तं द्रष्टव्यौ । [illegible] एतेन ज्ञानेन यज्ज्ञेयं तदुच्यते - ज्ञेयं [illegible]

× पत्रं पुनस्तथा लेख्यं यथेदं लेखितं प्रभो ।
येन जोशी भवेत्तद्वो ममागमनसाध्यकम् ॥
(८)
+ ग्रामे श्रीनगरे काश्यां यत्र कुत्रापि वा वसन्
पराधीन इवाभामि कारणं नाहं वेद्म्यहम् ॥
(९)
× दुर्लभं नैव त्वया प्रेष्यं श्रीमता गुरुणापि वा
गतवर्षे यतो जोशी पराकार्तितवांश्च तत् ॥ ९
किन्तु पत्रं तथाभूतं लेखनीयं त्वया धवा-
श्रीमता गुरुणा लेख्यं येन मूको भवेदयम् ॥ १०
आधिक्षात्री कलानां त्वं
नीतिलानामासि प्रभो ।
कर्तुं सर्वम् अकर्तुं वा
यद्यपि- समर्थोऽसि प्रभो । अत्र ॥ ११

भावयामि महाकाशं
व्यापकं हृदयस्थितम् ।
पश्यामि देहरूपेण
गगनादि धरान्तकम् ॥
पञ्चभूतात्मको देहो
परिच्छिन्नो यथा स्मृतम् ।
तथैवाप्यपरोच्छिन्न-
भूतदेहात्मकोऽप्यहम् ॥

सत्यान्तलोकाश्च तदीश्वरा ये
शक्रादिदेवाश्च महर्षयश्च ।
भूतानि पञ्चापि च जन्तवो ये
ते भान्ति मय्युल्लिखिताः फलानि ॥
तथापि
पादौ त्वदीयौ न जहामि शुभ्रे
भावेक्षमे देवि । समग्रदोषः
कर्तव्यमस्तीह न मेऽस्तु । कोऽन्योऽर-
हितात्त्वदीयस्मरणं प्रभोऽस्यात् ॥

श्रीगुरोः कृपया वाक्यं यन्त्रं मदर्थमागतम्
इति ज्ञात्वा मनो मेऽत्यपरां प्रीतिमुपागमत्

तवैव
रामेश्वरस्य

नमः श्रीगुरवे

यस्य श्रीकृपया सर्व-
तन्त्रेषु क्रमते मम
बुद्धिः स्फीता नमस्तस्मै
गुरवे करुणाब्धये ॥
(१)
अहैतुकी कृपा यस्य
राजते मयि मे गुरोः ।
शिवदृष्टिप्रदोऽसौ स-
लक्ष्मणो जयताद्भुवि ॥
(२)
केचिद्गुह्यमनिर्वाच्यं
तत्त्वं जानन्त्वबुधः ।
पश्यामस्तु वयं तत्त्वं
लक्ष्मणाख्यं परं महः ॥
(३)

रामेश्वरस्य

अनन्तसूर्यसंकाशं प्रसन्नवदनेक्षणम्
शान्तिवृन्दोपसंवीतं श्रीगुरुं नौमि लक्ष्मणम् ॥

यत्पादपङ्कजं स्तोतुमुद्युक्ता मातिषट्पदी ।
तत्रैवान्तर्गतालीना पातु सा मां कृपाम्बुधिः ॥

शरण्यं सर्वगं देवं निर्विकारं निरञ्जनम् ।
चिदाकारं सदाराध्यं नौमि श्रीगुरुलक्ष्मणम् ॥

रामेश्वरस्य

निष्क्रान्तोऽनुरागोऽहं त्यागः सर्वस्य लौकिके
गाढानुरागरक्तोऽस्मि स्वामिनेव समुच्छलन् ।
अलभ्यं नास्ति मे किञ्चिल्लभ्यं चापि न मे प्रभो
लभ्यालभ्यवदातीते स्थितोऽस्मि कृपया तव ॥

प्राप्तं स्तवराजस्य पुस्तकेन सहैव मे
श्रीगुरोः स्तवराजस्य प्रेषितं पुस्तमनेककम् ॥

पुस्तकार्थे पुस्त... ...

नमस्तस्यै महादेव्यै शारिकायै पुनः पुनः ।
यत्कृपावारिवृत्तोऽहं स्वामिनं वेद्मि आत्मनम् ॥
शारिकाश्रीकमलादेवी नमस्कार्या त्वया मम ।
X प्रेमनिर्झरधारा च पश्चाज्जीवनदायिनी ॥
X पूर्णतेजस्वरूपा मे शोभायाः पुस्तकानि च यानि वै
तानि त्वया प्रदेयानि यस्मै कस्मै निजेच्छया ॥
X नरागमनं नास्ति स्वामि यावद्ध्यायति प्रभुः ॥
"प्रमोदिन्यैव सर्वेषां कारिका" इति वच स्तव ॥
सर्वतः समुदासीनं मनो मे साम्प्रतं प्रभो ।
न गन्तुं नापि च स्थातुं वाञ्छत्यपि कदाचन ॥
यावदायुष्यशेषं कालं क्षपयामि यथातथा
त्वन्मोदनानिशं ध्यायन् पादपद्मयोरिति निर्वृतः ॥
पूज्यश्रीरिव भवती कारिकेव मूर्तिं
याचे स्पृहा स्फुरति चेदिह कदाचिदन्या ॥
शाकंविहितां मधुरभीतिजाताविरस्य
पादाब्जरागरसिकं कुरु तत्तते माम् ॥

5ЧB L86

प्रभो। त्वमेव सर्वस्य हृदिस्थाऽसि प्रयोजिका
सर्वसिद्धिप्रदा देवी त्वां नौम्यहमहर्निशम्॥
(१)

अस्मिन् पत्रे समासाद्य परमानन्दनिर्भरः।
निर्धूय निग्रहं योगी प्राप्तानुग्रहवानिव॥
(२)

अभिष्टौमि नमस्यामि प्रभो त्वां प्रतिभाप्रदाम्।
सत्यं त्वया विना सद्यो भवामि गतचित्तकः॥
(३)

प्रभोऽस्म्यहं तवाधीनः स्वं ध्यायेव गुरोः पुनः
यस्य श्रीमहसस्तस्य पादौ मे शरणं सदा॥
(३)

देवीं श्रीशारिकां नौमि श्रद्धया, भक्तवत्सलाम्
यदनुग्रहतो वर्ते धन्येव परमेश्वरः॥
(४)

यस्या दर्शनमात्रेण महानन्दाम्बुधौ मम
मनः प्रयाति लीनत्वं तां क्षमां वच्म्यहं नु किम्॥
(५)

नित्यं स्मराम्यहं पुष्पाणि कामये दर्शनं पुनः।
ततो मन्ये भवेद्देव दर्शनं तावकं पुनः॥
(६)

L85

सन्दृश्य सम्पूज्य समाश्लिषन्तो
भवन्तु लोका भुवि भाग्यवन्तः।
वयन्तु तेऽनुग्रहभव्यभाग्याः
संस्मृत्य देव्याश्चरणौ नमामः॥
(१)

स्मृतौ स्वतन्त्रोऽस्मि न हृत्वपेक्षा,
भोगापवर्गौ स्मृतिरेव चैका।
इत्थं तु प्रत्यक्षतयैव पश्यन्
नित्यं स्मरन्नौमि सुरेन कोलिके॥ अभि- वायकासि
(२)

मुग्धामतिस्त्वत्स्मृतिसर्जनीयं
सदानुरक्ता भवदुःखमुक्ता।
महोत्सवस्था न शृणोति वाच-
मुन्मत्तभूता समयं न वेत्ति॥ मुग्धामतिः कर्त्री
(३)

कालोऽव्यतीतस्त्व कियान्न वेत्ति
दत्तं न वा तं समयेऽनयाऽत्र ते। तुभ्यम
वक्रोक्तिर्हि स्वामत एव याचे-
क्षान्तिं क्षमार्थी कृपया क्षमस्व॥
(४)

प्रभो नेच्छामि वर्षेऽस्मिन् ग्रामं गन्तुं मतः त्वया- गत
सहैव स्थातुमिच्छाऽस्ति को विचारस्ततस्तव॥
(५)

त्वन्मयं सकलं विश्वं पश्यन् विश्वेश्वरं त्वयि ।
नात्मानं न मनोबुद्धिं भिन्ने पश्यामि त्वामपि ॥

(५)
निधाय हृदये करसम्पुटं नीतिमाहि विश्वान्तं नियमन
[illegible] चापि विलोक्य चापि शान्तिं परां द्रष्टुमिवाहं बुभुक्षा ॥

(८)
[illegible] भासमानं हृदयेऽहं ।
[illegible] महीनो नैव भासे कदाचन ॥

[illegible] पादयुगलं भावं पात्येजने ।
[illegible] प्रभो मम ॥

(९)
प्रकाशमानं [illegible] शोऽहं पुनः करोमि ।
मुहुः प्रकाशितेव [illegible] मयि ॥

(१०)
स्वात्मानुसंधितं जनाहं बोधितं [illegible] नर्भरः
विहरं लोकमार्गेऽपि योगी नाप्नोति संसृतिम् ॥

अनन्तगाम्भीर्यविशालशान्ति-
सम्पूरितान्तर्हृदतरङ्गजुष्टम् ।
तत्रैव स्वीयं स्वरूपं प्रतिभाति यत्र-
स्फुरादेवाचेतं भुवनं विभाति ॥

यादृशोऽहं प्रभो! भाति त्वद्दर्शनसमुत्सुकः
कृपया तादृशावस्थां शीघ्रं कुरु तां मे पुनः पुनः ॥

श्रीसद्गुरोर्युग्मपदारविन्दं
विलोक्य विघ्नं सविधानदक्षम् ।
नित्यं श्रयेऽहं हृदि, भोगमोक्षौ-
भुङ्क्ते न यस्य त्यजतः समीपम् ॥

अरविन्दस्य

[illegible] कृपयैवास्मि सदानन्दरसाप्लुतः
[illegible] श्रीगुरुं वन्दे [illegible] बोधविग्रहम् ॥१॥
एकं स्मरन् सुवन्नेव वैश्वरूप्यमहं दधत् ।
मधुरैश्वर्यचमत्कृत्याऽऽक्रान्तो भासि नमामि च ॥२॥
प्रभावं श्रीगुरोः पश्यन् विस्मयाविष्टमानसः
शृणोमि त्वन्मुखोद्भूतां गिरं गाम्भीर्यसंयुताम् ॥३॥
— " विसृजन् विश्वमखिलम्
पोषयंश्च विलापयन् ।
रोधो विजेष्यते, किन्तु
गुरुः शिवं प्रकाशयन् ॥

इदानीमेव ते पत्रं प्रिये प्राप्तं सुखावहम् । विज्ञाते [illegible] सर्वः ।
[illegible] वार्ताये विदितं मया ॥
ज्ञाने [illegible] पुत्रस्य समाचारो मया श्रुतः
अद्भुतानन्दसम्पूर्णो भ्राजे पूर्णमनोरथः ॥
अस्माकं कुशलोदानीं विदितो कुशलो तव ।
रागः स्वाभाविको नित्यो, विरागः कृत्रिमः कृतः ।
ततोऽहं न विरागं हि प्रभोर्वाञ्छामि निश्चयम् ॥
मधुरो राग एवास्ति विरागास्तिक एव हि
जीवने राग एवास्ति विरागो मरणं ध्रुवम् ।
शक्तिरूपमयेति शिवतां शिवोऽप्याया ति शक्तिताम्
किं वाच्यो गुरुमार्गमितां प्रभो त्वं सर्वमङ्गलम् ॥
यथेच्छसि तथैवास्ते ~~वशो नित्य~~ गुरुपदे वशोऽस्मि ॥

3

हे प्रभो! त्वत्कृपोद्भवा मोहच्छेदे गते भयः ।
शिवीभूतः स लोकेऽस्मिन् दृश्यते बालकवत्स्थितः ॥

(९)

त्वदेकाश्रयतो दीनो येनाप्ता कृपया तव ।
दृश्यते यदि लोकेन देहवानपि तेन किम् ॥

(१०)

आत्मज्योति स्वरूपं स्वं तन्मयं चिद्घनात्मकम् ।
येन, स म्रियते नैव जातु, [illegible] जीवति ॥

जन्ममृत्युजराव्याधी
पूज्या या मातृका मम ।
संप्रवृत्ता सदा भूयात् —
लोकानुग्रहकारिणी ॥

(१२)

अरूपं विश्वरूपं च श्रीगुरोर्यस्य सर्वदा
स गुरुर्लोकमातृणां मे पूजनीयः सदास्ति नः ॥
आविर्भवति यो बुद्धौ गतं देवं च शङ्करम्
स पूज्यो मे सदैवास्ति भूतोऽपि गुरुपूजकः ॥

८४७

घ ६६

2

स देहे चक्षुनीं विविधाश्च शक्तीः
दैन्याः परीयाः समुदीयमानाः।
समीक्षमाणो न कदापि यामि
देहादि भावं निजचित्स्वरूपः॥
(५)

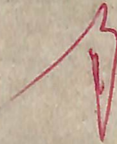
प्रियात्पुत्रा च मित्राच्च
यत्र वासः पृथग्भवेत्।
स देशो नैव रोचेत
मूढाय महतेऽथवा॥

वृद्धस्य मे विगलितेन्द्रियशक्तिकस्य
मोहस्य लेश इव यः किल शेष आसीत्
कालः करालमहिमा तमपीह नित्यं
निःशेषतां नयति देवि, किमत्र चित्रम्॥
(६)

कुत्र यामि किमर्थं वा निःस्पृहोऽस्मि गतभयः
उदासीनवदासीनं विश्वमाश्रीत न जिघ्रति॥

६४७ (८)

५८६



S3 A 283

पीयूषद्रवनिर्मिताकृतिमती द्रवीकृतेन्दुप्रभा
पूर्णानन्दसुनिर्भरा मतिमतां श्रद्धास्पदं शान्तिदा।
दिव्यादिव्यसुखप्रदा सुललिता सौभाग्यसम्पत्प्रदा
हृद्याहार्दविवर्धिका भवतु मे देवी हृदिस्था प्रभा ॥

महानन्दपरानन्द-
दिव्यानन्दप्रदे प्रभे।
नानानन्दकला काचिन्-
मयि भाति कदाचन ॥
(१)

अनाद्यन्तमहानन्द-
सागरे व्यापके मयि-
शान्तेऽप्यशान्तिकल्लोला-
दृश्यन्ते मायया कृताः ॥
(२)

व्यवहारपदे तिष्ठन्
शिव एव पशुर्भवेत्।
भ्रान्त्यपूर्णोऽपि किं तेना-
पूर्णतां याति वै शिवः ॥
(३)

हृदयं मे विजानाति
न मे मृत्युः कदाचन।
जन्ममृत्युजराव्याधि-
विमुक्तोऽहं यतोऽव्ययः ॥ ॐ
(४)

किं चित्तात्म प्रभो दुर्ग्रथं
सर्वं कि आत्ममति ते ।
? हित्वा सर्वं स्वमात्मानं
स्वमेकत्वं समाश्रय ॥

कृपा दृष्टिः सदा कार्या
न स्मर्तव्यो जनः स्वयम् ।
यतो न स्मर्यतेऽनेन
कोऽपि क्वापि कदाचन ॥

सर्वस्माद् विनिवृत्तोऽहं
स्वात्मन्येव स्थास्यामि सर्वदा ।
जन्मान्तरं गृहीत्वैव
देहे भामि निरञ्जनः ॥

स्वभावात् सम्भूतां ननु परशिवाच्छादनमयीं
विहाय प्राक् क्रीडां भवसुखमयीं दुःखकलिताम् ।
तथा स्वात्मानं । शिवमकल मोक्षं [illegible] रहितं
शान्तं स्वच्छं [illegible] फलं [illegible] रहितम् ॥

वन्द्या सा निर्विते देवी शारिका भ्रमवादिनी।
सूयते सिद्धिलाभार्थं श्रद्धया परया मया ॥

(११)

श्रीमती शारदा देवी साक्षाच्छान्तिस्वरूपेती
नमस्कार्या त्वया प्रेम्णा ममैव वचसा प्रभो ॥

(१२)

अनन्तानन्दसन्दोहं मानलाभ समुत्सुकः
आगमिष्याम्यहं नूनं सरोजेभ्य दिनोत्सवे ॥

(१३)

क्षणं प्रभो! वहिर्नीय मनो मेऽप्यनुकम्पया।
देयं पदोऽन्तरं शीघ्रं नो पेदृपः स्वजनः प्रभो ॥

(१४)

पुनस्त्वां परमप्रेम्णा भक्त्या वी प्रणमाम्यहम् ।
मनो मे त्वत्पदाम्भोजे वसत्वेतु महासुखम् ॥

(१५)

अकोऽपि चेदपि कुर्वाणः स्नेहैर्दुःखान्यपोहति
न तस्य किमपि फलं येन यत्न प्रयोजनः ॥

मिथिलानन्द संस्कृत—
विद्यालय
पो. ग्रा. पटसा
भाया- हसनपुर (सुग-
(जि. दरभंगा) रमौली

निरञ्जनं प्रभुं नौमि साञ्जनोऽहं सदैव हि
निरालम्बां त्वदालम्बोऽहं त्वां नौमि पुनः पुनः ।

(१)

प्रभो! विशुद्ध! परमार्थमग्न!
मनस्त्वदीयं कथमस्मदादेः— ।
स्मृतौ कथञ्चित् प्रभवेत् कदाचित्
वयं निमग्नास्त्वदनुस्मृतौ स्मः ॥

(२)

वाराणसीतो ननु पत्रमेकं
दत्तं नु तुभ्यं, ननु तस्य लब्धम् ।
प्रत्युत्तरं, तेन पुनः पुनर्मे
विचेखिद्यते स्वान्तमलब्धधैर्यम् ॥

(३)

समाधिभाजोऽपि समाधिभङ्ग-
मनः प्रभो यं विभयी करोति ।
त्वय्येव भग्नस्य न मे समाधिः
कुतः पुनः स्यादपि सुस्थितिर्मे ॥

52 A 282

॥ नमः श्रीगुरुपादपद्मेभ्यः ॥

धर्मार्थकाममोक्षाणा-
मुत्पत्तिस्थितिकारकम् ।
दायकं वा विवेकादिभ्यो
नौम्येकं गुरुलक्षणम् ॥

वेदशास्त्रपुराणादौ
गीयते यो महेश्वरः ।
पृथिव्यां गुरुरूपेण
स्थितं तं नौमि लक्षणम् ॥

महेश्वरो वा जगदीश्वरो वा
गुरोः प्रसादाल्लभते प्रतिष्ठाम् ।
गुरौ न यस्यास्ति विनम्रबुद्धि-
र्न तस्य धर्मो न महेश्वरोऽस्ति ॥

भोगेच्छा निर्गता भोगाद्
मोक्षेच्छा गुरुतो गता ।
लोकाभिसन्धिनिर्मुक्ता
भक्तिर्जातु गुरौ मम ॥

52 A 282

इत्थं त्वदेकाग्रमनाः सदैव
वसामि कुत्रापि सह त्वयैव ।
प्रेम्णा पवित्रेण वशीकृतोऽहं
तथापि दुःखं स्वमनवाप्रपन्नः ॥
(५)

प्रभो! प्रकाशमानोऽसि साधनान्तरमन्तरा
त्वं, तथा त्वयि मे प्रेम कारणान्तरमन्तरा ।
(६)

स्वभावतो यथा नित्यं त्वयि विश्वं प्रकाशते
स्वभावतस्तथैवाऽलि रतिस्त्वय्यनपायिनी ॥
(७)

भाति कृत्रिमता लोके सर्वत्राविदुषो यथा ।
विदुषस्तथैव सर्वत्र भात्येका शक्तिकर्तृता ॥
(८) नवीनः अथवा नवसंकल्पकः

यस्यास्ते कृपया वाणी प्रभो! नवरसान्विता ।
षड्रसां रसनां जित्वा वन्द्यामृता जगत्त्रये ॥
तथैवाप्रियतापाङ्कपूतोऽहं प्रतिभावितः ।
~~[illegible]~~ विश्वं विजित्य शिवतां प्राप्तोऽस्मि तवानुगः ॥
(१०)

5 IB 281

त्वमेवासि त्वमेवासि
त्वमेवासि न चोऽस्म्यहम् ।
अहन्त्वेऽपि त्वमेवासि
त्वदाभिन्नोऽस्म्यहं ततः ॥

(९)

त्वदाभिन्नतया तिष्ठन्
किन्नाकार्यं मेदं प्रभो ।
कोऽन्योऽस्ति मादृशो लोके
सम्भावियमन्नसं भवं मे ॥

१०

न-असम्भवम्-
(ऊपोखुतसंवादाचे)
सूचे:

निखिलागमसंचारि
तत्त्वमेकं शिवात्मकम् ।
सोऽहमस्मीति यो वेत्ति
किन्नु तस्यावशिष्यते ॥

(११)

सुखानि दुःखानि विकल्पजानि
भवान्ति गच्छान्ति, न मेऽस्ति हानिः ।
त्वदात्मताऽनन्तसुखैकहेतु-
र्जाता तु मा मां भुवि दुर्लभेयम् ॥

न त्वस्मातु

१२

त्वदनुस्मृतिरेवैका, प्रेयसी मे हृदि स्थिता ।
वल्लभे ! वल्लभा भूयगत
स्पृहा नान्या स्फुरत्यपि ॥

१३

सर्वसाधनसम्पन्ने !
सर्वशक्तिसमन्विते !)
प्रभो ! त्वं सर्वसत्त्वाना-
मस्येका तत्त्वमुत्तमम् ॥-

दासे कृतागसि भवेदुचितः प्रभूणां
पादप्रहार इति मानिनि ! मासि दूये । अङ्ग उरः
किन्तु प्रभोऽनवसरे मुखपङ्कजाते
व्यर्थं वचः प्रचलितं, यदियं व्यथा मे ॥

(४)

त्वयि मे परमा प्रीतिः
स्वाभाविकीव वर्तते ।
यतस्त्वं सर्वशक्तीनां
शक्तिर्मेऽसि सरस्वती ॥

(५)

माता त्वमेव भगिनी वनिता त्वमेका
पुत्री त्वमेव ममताऽप्यसि मे त्वमेव ।
बुद्धिः स्पृहा च लघुता, ~~मम~~ गरिमा प्रभो मे
किं तन्न यद् भवसि मे भवती भवानी ॥

(६)

आगमन दिने पश्चात्
पुनः प्रेक्ष्याम्यहं प्रभो ! ।
न खेदस्त्वया कार्यो
भवत्येवं प्रमादतः ॥

८

L81 51A

श्रीगुरोरीश्वरनामभोजे
नित्यं देया नतिर्मम ।
यस्य स्मरणमात्रेण
मम देहः शिवायते ॥

श्रीमत्यै शारिकादेव्यै
कृपामूर्त्यै सदा मम ।
कायेन मनसा वाचा
कृता देया नतिस्त्वया ॥

अर्चनीयोऽयं प्रेयसो मे,
मया दत्तं नमस्त्वया ।
निर्वयं कृपया श्रद्धां
पुनस्त्वां च नमाम्यहम् ॥

भवत्कृपाभिलाषिणा
रा० स्वामी

51 A L81

प्रभो! मे परमाराध्ये!
सर्वमङ्गलदायिनि!
त्वदुन्मुखो नमन् ध्याये
त्वामेव परदेवताम् ॥
(१)
तुभ्यं यथैव रोचेत
तथा स्थास्यामि सन्निधौ ।
दृष्ट्वा मां शाम्भवीयुक्तं
नूनं त्वं न वदिष्यसि ॥
(२)
ततोऽहं मानयिष्यामि
नास्य शक्तस्य भारतीम्
अर्धोन्मीलितनेत्रस्तु
शङ्करस्तोऽस्ति सर्वदा ॥
(३)
इत्थमेव मयाऽद्य हं
जीवनेऽस्मिन् सदा प्रभो! ।
ज्ञायते न मया कोऽपि
कोऽहं को मत्तोऽधमः ॥

50 B

L79

नमः श्री गुरवे

यस्यानन्ताद्भुता शक्ति-
भोगमोक्षोभयप्रदा ।
प्रत्यक्षं परिदृष्टास्ति
तं गुरुं नौमि लक्ष्मणम् ॥
(१)

अनुक्रोशः = अनुकम्पा

यस्यानुक्रोशवशाद्देव-
पशुराप्नोति दुर्लभाम् ।
स्वात्मनः शिवतां स्वच्छां
गुरुं तं नौम्यहं निशम् ॥
(२)

यो मे गुरुर्विश्वमयो महेशः
श्रीलक्ष्मणारण्यः करुणावतारः ।
दैन्यापहारी शिवताप्रदायी
तं नौमि नित्यं मनसापि वाचा ॥
(३)

ॐ

[illegible] इत्यमीः

विश्वाभिरामगुणगौरवगुम्फितस्य
श्रीदेशिकाङ्घ्रियुगलस्य महःप्रभावात् ।
धन्यस्य मे विषयभोग इहैव विश्वं
मोक्षायते, यदिति विस्मयमुपेतोऽहम् ॥४॥
(४)

अतः सदाहं गुरुमेव सेवे
स एव चैकः शरणं ममास्ति ।
न वेद्मि चान्यं कमपीह देवं
गुरुर्मदीयः परमो हि देवः ॥
(५)

[illegible]

तत्रभवति । स्वान्तशायिनि । निखिलावभास-
मूलधाम्ने धाम्ने नमस्तुभ्यम् ।
पूर्वम् आश्रमसङ्केतेन श्रीमत्या भगवत्या भवत्याः
पत्रस्योत्तरं मया प्रेषितम् । किन्तु अद्यापि
तदुत्तरं अलब्ध्वा प्रतीक्षमाणेन कालः नीयते ।
भवत्या कीर्तितं पत्रोत्तरं प्रेषणीयम् अद्यत्वे
तच्चरणानुभवः सन्नद्धोऽस्मि इति शीघ्रं
दयां अपि भवत्याः प्रतीक्षमाणः नाम
अनन्यभक्तिं प्रकाशयाम । [illegible]
मेवं मया आगन्तव्यम् । अद्यत्वे महद्भिः
[illegible] अनुभूतमेव भवति । [illegible]
[illegible] निवेदयिष्यामि । [illegible]
[illegible] निवेदनीयम् । पूज्यपाद
गुरुदेवेभ्यः ध्यानतयोः निवेदनीयाः
[illegible] मम नमस्काराः कथनीयाः
तस्यै श्रीमूर्तये [illegible]
प्रणतिपूर्वकं [illegible] । किमन्यत्
[illegible]
भवत्याः
[illegible]

यस्य श्रीकृपया गुरोः पुनरिदं प्राप्तं वपुः
शैवं, शक्तिसमन्वितं भुवि नृणां पुण्यैः [illegible]
तस्मै श्रीगुरुलक्ष्मणाय सततं साक्षाच्छिव[illegible]
श्रद्धाभक्तिनमस्क्रियादिसहितं स्वात्मार्पणं [illegible]
(४)

यत्कृपालव पूतोऽहं
कालातीत स्वरूपवान्
जन्म मृत्यू न पश्यामि
सद्गुरुः शरणं मम
(५)

विभिन्नविषयभ्रान्तो भाति स्वात्मनि यैव [illegible]
पङ्कुरी दृष्ट्या स्तौमि तं शिवं भाविल[illegible]
(६)

यो मे स्वात्मसुखप्रदोऽस्ति भगवान् स्वच्छः स्वतन्[illegible]
दिव्यादिव्यविभूतिदो गुरुवरः श्रीलक्ष्मणाख्य[illegible]
तं देवं करुणाकरं बुधनुतं भूमौ स्थितं स[illegible]
श्रीमन्तं भावन्तमेकमनिशं ध्याये स्वकीयं [illegible]
(७)

49B 876

विकसज्जालैः प्रसृतार्थजालो
विभासमानं त्वविकल्परूपम् ।
मूढैरदृश्यं कृपयैकगम्यं
पश्याम्यहं श्रीगुरुलक्ष्मणाख्यम् ॥
(६)
आकल्पाद् भवभूमिकाभिरखिलैः-
नित्यं सजे दुःखितो, लेभे नैव-
कदापि निर्मलं सुखं भ्रान्त्या भ्रमन् संसृतौ।
दैवाद् दर्शनमाप्तवान् भवगुरोः श्री-
लक्ष्मणस्य प्रभोः, तत्पादैः परिपूर्णता
मुपगतो ध्याये गुरुं सर्वदम् ॥
(७)
अकिञ्चनत्वं च विवासनत्वं प्रबोधमावश्च
निजात्मभानम् ।
सम्पत्तिमेतां गुरुतो विलभ्य सेवे सदाहं
गुरुपादपद्मम् ॥

श्रीगुरुचरणरजसा पूतस्य रामेश्वरस्य

49B ✓ 877

यः सर्वत्रैकरूपो बहुविधभावेन सन्नामरूपस्वरूपो-
भोक्ता भोग्यश्च भोगो भवति च सततं क्रीडमानः स्वतन्त्रः
देवोऽसौ लक्ष्मणाख्यो विधृतगुरुतनुर्जन्तुचक्रं समस्तं
प्रोद्धर्तुं ध्वान्तमग्नं रविरिव किरणैर्ज्ञानभास्वान् प्रशस्य
(५)
प्राप्तायं न प्रशान्तमाश्च विविधैर्यशैः स्तवैर्योगिभिर्वियं
वाञ्छन्तोऽपि समग्रशक्तिसहितं द्रष्टुं स्वहृच्छाऽपुरः।
तद्धान्ध्यावरिपूर्तयं सुकृतिनामस्माकमासिन्भवे
सोऽयं वै मिलितो स्वयं हि भगवान् व्यक्तः पुरस्तात्स्थितः
(६)
निःशेषितं भ्रातमिदं समग्रं
बन्धायितं यन्मम पूर्वमासीत् ।
यस्य प्रसादात्करुणाकरं तं
कायेन वाचा मनसा प्रपद्ये ॥
(७)
वाञ्छितार्थप्रदं वन्दे भक्तार्तिप्रलयंकरम् ।
भुक्तिं मुक्तिं प्रकुर्वन्तं शिवं साक्षाच्चनेत्रगम् ॥
(८)

नमो नमः श्रीगुरुपादुकाभ्याम् ॥

सर्वोच्चोर्ध्वस्थितो यो निजपरमहसा
भासयन् विश्वमेतत्, चित्राकारं विचित्रं
सच्चरमचरकं भिन्नभिन्नस्वरूपम् ।
स्वैरी तत्रापि पूर्णो ज्ञानभ्रान्तिरहितो
भाते देहेन तिष्ठन् तं देवं लक्ष्मणाख्यं
प्रभुवरमनिशं देशिकेन्द्रं नमामि ॥

(१)

निःसीमनित्यनिजरूपशिवस्वरूपे
लब्धास्थिति निखिलदृश्यमयस्वभावे ।
येन त्वदीयकरुणामृतनिर्भरेण
तस्यैष ते चरणयोस्त्रिविधः प्रणामः ॥

(२)

यत्पादस्मरणं नित्यं दुःखं मोहं व्यपोहते
अद्भुतां तनुते सद्यः शिष्यस्वान्ते चमत्कृतिम् ॥
तस्यैव गुरुराजस्य लक्ष्मणस्य दयाम्बुधेः
प्रणामः पादयोर्नित्यं कृतो येन मनसा मया ॥
तत्प्रस्तोत्रं वचसा तस्मै तत्पादकमलद्वये
मूर्ध्ना ऽद्य क्रियमाणेन साकं भक्त्या समर्प्यते ॥

(४)

देहाहंकृतिमानबन्धनतमो निर्धूय शिष्यस्य यः
सद्यः सत्प्रकटीकरोति हृदये शैवं पदं शाश्वतम् ।
तं वन्दे भुवनाधिपत्यबलितस्वात्मस्थितिप्रापकं
श्रीमच्छ्रीकरुणाकरं गुरुवरं देवं शिवं लक्ष्मणम् ॥

(१)

संसारे नरजन्म दुर्लभतरं तत्रापि विद्या पुन-
र्विद्यावत्स्वपि सोऽति दुर्लभतरो योऽध्यात्मविद्यारतः ।
तेष्वप्यस्ति महात्म ईश्वरमहाः कश्चित्त्वसंविन्मयः
किन्त्वेषोऽस्ति गुरुः सुदुर्लभतमः शिष्यांश्च कुर्वन्निजान् ॥

(२)

दृष्ट्वा लोकान् समस्तान् विगलितविभवाज्ञानशून्यान् स्वकीयान्
नित्यैश्वर्यप्रदाने कृतमतिरधुनाऽनुग्रहैकस्वरूपः ।
धृत्वा श्रीकण्ठनाथाकृतिमिव भुवने लक्ष्मणाकाररूपं
भक्तेभ्यो देशिकेन्द्रो वितरति कृपया ज्ञानमैश्वर्यमीशः ॥

(३)

शब्दार्थव्यवहारबन्धनवशो दैवस्य यस्य क्रमे
पश्यन्त्यादयवलग्नवर्णमहसा भातानि लोकोत्तियान् ।
स्वाङ्गैर्न विभात्यमुष्य कृपया शिष्यस्य यत्तं विने
सोऽयं मे गुरुरीश्वरो विजनतां ध्यान्तामहत्तो भवि

(४)

स्मरणादेव यां सत्यः
पश्यामि पुरतः स्थिताम् ।
तां प्रभां त्वामहं नौमि
वाञ्छितार्थप्रदां सदा ॥

(१)

प्रेम्णा च भक्त्या विविधार्चनाद्यै-
रुपास्यमाना न समक्षमेषि ।
या त्वं प्रभे! सा मम हार्दपद्मे
कृताधिवासा सततं विभासि ॥

(२)

यस्याः पादनखज्योत्स्नो-
ल्लसितं मे हृदम्बुजम् ।
संकोचं नैव गृह्णाति
वन्दे तां त्वां नतानन: ॥

(३)

शङ्कया सहितं पत्रम्
अमनस्कतयाऽङ्कितम् ।
प्राप्यापि मे न सन्तोषो
ज्ञात्वा त्वां निःस्पृहामिव ॥

(४)

गमनागमनप्रश्ने किं ब्रवीम्यहमन्तरम् ।
त्वदिच्छयैव मे यस्मादागमनस्य सम्भवः ॥
अतो भवत्या स्फुटमेव लेख्यं (५)
दिने गुरौ येन भवेद्धि पूजनम् ।
कृपा च कार्याऽनयने ममोपरि
त्वया तदा स्यान्न हि कोऽपि बाधकः ॥

किन्तु प्रभो त्वत्करुणाभिकाङ्क्षी
स्वपैति मे नो हृदयात्कदापि ॥
त्वं सेव्यमानो न ददासि किं मे
रक्षां सदा मे करुषे त्वमेका ।
बुद्धिं प्रकाश्यासि दयां तनोषि
स्वानन्दवानाय सदाप्लुतासि ॥
(८)
श्रीमत्पैसम्कैकदेवौ दयार्द्रौ पुनर्नमः ।
यत्कृपासततं मह्यं ददन्तीं मनोगतम ॥
एवं नुतिस्त्वया देवगुरुनाथाय शूलिने ।
दीनोद्धारधुरीणाय लीलाकैवल्यदायिने ॥
इदं च भूदं नापि यत्
सर्वं च तद्दार्थकम् ।
प्रश्नीभौमी च विज्ञानी
त्वमेवैका जगद्गुरुः ॥
किं किं न लिखितं पूर्वं
लिखामि च न किं पुनः ।
क्षमाशीलासि भवती
दान्तव्यास्त्रुटयो मम ॥
पत्रं प्रभो किं तेऽर्पणं तेऽयं प्रभवतः
ततस्त्वत्पत्रस्य प्रश्नीधारा में प्रवर्तते ॥
सद्गुणासि भवती शास्त्रानुशीला चैतन्यनिर्भरा
कदाचिन्मादृशस्यापि कुलानां दयालिका ।

इत्यादिभ्यो भक्तिमा हृदयप्रेरक... इति... त्वत्पदपद्मं ... यस्य ... इति ... हृदयस्य ... आगच्छ ... पुरुषात्... शुभं ... तत्र ...

(१)

श्रौत स्मार्त विधेर्विधान निपुणा शास्त्रप्रवृत्तौ क्षमा
धर्माधर्म पथप्रदर्शन विधौ यास्ति प्रदीपोपमा ।
वाग्देवी भुवनेश्वरी व्यवहृतौ सर्वाध्वपूर्वं स्थिता
सोऽपि स्तोतुमनीश्वरा गुरुवरं श्रीलक्ष्मणं कः स्तुयात् ।

२)

श्रीमद्गुरोः स्तुतिमहं करुणाकरस्य
कर्तुं प्रयामि शरणं सकलप्रदस्य ।
तस्यैव विश्ववपुषो निखिलाधिपस्य
श्रीलक्ष्मणस्य शरणागतवत्सलस्य ॥

(३)

यद्रूपं सैव विभाति विश्वमखिलं भिन्नस्वभावात्मकं
यद्रूपं सैव च भाति शुद्धमनिदं नैजं स्वरूपं स्थितम् ।
यो बध्नाति विमोचयत्यपि जनं स्वीयं स्वयाक्रीडयन्
व्यक्ताव्यक्ततया स्थितं गुरुवरं श्रीलक्ष्मणं स्तौम्यहम्

(४)

स्वरूपावस्थितौ शेषं वेत्तृवेद्यप्रपञ्चकं
बहिर्भूतं निजात्मनि ।
यो बहिर्भावयन् स्वस्मात् [illegible] ?
भासयन्नस्ति सर्वात्मा स्वस्यैव [illegible] भासिने ॥
तस्मै स्वच्छन्दनाथाय [illegible]

(५)

मोहान्धतमसध्वंसी पूर्णानन्दप्रभाकरः ।
[illegible] स्वभाव शेखरः
जयतात् श्रीगुरुः कोऽपि [illegible]

(६)

विश्वं भिन्नतया भातं स्वात्मन्येव प्रकाशितम् ।
सत्त्वौघेन नमः तस्मै [illegible] स्वभावभासिने ।

(७)

देव ! नदीय करुणाद्रुतमीह भावम्
त्वामेव पश्यति सदा निखिलस्वरूपम् ।
नित्यं नवेश पद पङ्कज भृङ्ग भूत
अत्रसो पिबन्नाति तरां परमामृतम्मे ॥
(८)

आत्मयां लभ्यते येना-
ऐश्वर्यं दायिति मेव च ।
निःशेषिते पुनः प्राप्यं
तस्मै श्री गुरवे नमः ॥
(९)

पदसरोजरतिं परिहाय वै सकल लोक इहास्याति दुःखितः ।
भवतु नाथ ! तथा भवतः कृपा रुचिरस्तु जनस्य यथा त्वयि ॥
(१०)

प्राणापान प्रकाशिन्यै शून्याशून्यादि योनये
बन्धमोक्षप्रभासिन्यै प्रमदिन्यै नमोऽस्तुते ॥
प्रमायै प्रतिभादायै निखिलाधारभूमये
भावाभाव प्रकाशिन्यै कर्त्र्यै हर्त्र्यै नमोऽस्तुते ॥
दयावत्यै प्रहर्षिन्यै नतिमे कृपयात्वया
सर्व क्लेश विनाशिन्यै संहारिण्यै मुहुर्मुहुः ॥
निखिलविश्वमिदं मदमोहदं
यदितरस्य विभाति भवप्रदम्
तदमृतं कृपया ...
...

873 47 B.

श्रीमत्यै शारिकादेव्यै नमो देयं पुनः पुनः
तत्कृपया सा त्वया कर्तुं कृपां येनागतिर्भवेत् ॥ ९
रक्षणीया त्वया चापि दया मह्यं दयावति ।
यस्माच्छ्रीनगरस्याथ पुनर्मे दर्शनं भवेत् ॥ १०॥
श्रीमतेऽभिनवस्यापि ग्रन्थमादाय यस्त्वया ।
कृतः प्रश्नः पुरा पत्रे तस्य दत्तं मयोत्तरम् ॥
पत्रं द्वयं तु ते दत्तं गुरोर्नाम्नैव सत्त्वरम् ।
~~त्वया~~ पत्रद्वयं त्वया तच्च न प्राप्तं किं हे प्रभो ॥
अद्यापि ... न जानामि मौनं केनात्र स्वीकृतम् ॥
हे भावया यदहं तुभ्यं नारोचेतत् कृतम् ॥
यतस्तेऽद्य नैव मया प्राप्तं किंचित्पुनर ॥
अगाधे स्थामहं नूनं दर्शनार्थं त्वत्प्रभो ।

श्रीः

कालातीत वपुष्मतीं कलनया कालीं-
वमन्तीं सतीं
सद्यः शान्तिसुखप्रदां स्मितमुखीं
लोकोत्तराह्लाददाम् ।
नैजानन्द विभाविनीं भगवतीं
संविच्छिवां सुप्रभां स्व. ५
सेवे नित्यमनन्यभाननिरतां-
स्पन्दोन्मुखीं श्री प्रभाम् ॥

लक्ष्मणाय नमस्तस्मै (१)
शिवाय गुरुमूर्तये ।
सृष्ट्वा जगत् पुनस्तस्मिन्
वपुष्मानिव भाति यः ॥

इदं तया सर्वमिदं विभास्य
विभाति यः पञ्चमकृत्यमग्नः ।
तस्मै महेशाय च लक्ष्मणाय
नित्यं नमो मे मनसा च वाचा ॥
(२)

येन विश्वं कृतं मह्यमनन्ताह्लादसुन्दरम् ।
नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमस्तस्मै मृडात्मने ॥
(३)

तस्यै नमो मे करुणैकमूर्त्यै
श्रीशारिकायै जगदीशशक्त्यै ।
तनोति विश्वं शिवमानन्दं या
ददाति मुक्तिं सह भुक्तितः सदा ॥
(१)

शान्तिर्यया ...
सर्वमङ्गलदा शुभा ।
सा सर्वदास्तु मे शाम्भवी
प्रणम्या शारिकाशालिनी ॥
(१)

नित्यानन्दवपुष्मतीं निजगतामानन्दसंवर्द्धिनीं
देवीं विश्वात्मिकां भगवतीं दिव्यां स्फुरच्चेतनाम् ।
चैतन्यामृतसागरस्य लहरीं बिन्द्वादिवर्णात्मिकां
विश्वोन्मेषविधायिनीमपि परां वन्दे विशुद्धप्रभाम् ॥

प्रेम्णा त्वत्प्रतिमापूर्ते जनो योऽभूत्कदाचन ।
स त्वां सदा स्मरन्नाति गतदुःखसुखः समः ॥ २

तुभ्यं दत्तमनेकाद्य यथावच्च पुनः पुनः ।
न प्राप्तं तत् त्वया तस्मात् खिद्यतीव च मे मनः ॥ ३

मन्ये कुशलिनः सर्वे तत्र स्युर्भवदादयः ।
श्रीमन्तो गुरवस्तथा देव्यः पूज्याः श्रीशारिकादयः ॥ ४

मन्ये गन्तोत्सवस्यापि नोद्देशः समयोऽभवत् ।
ततः श्रीगुरुपूजार्थं वाक्पुष्पं प्रेष्यते मया ॥ ५

स्तोत्रैरेव त्वया देया सदाभिन्नेश्वरं पया ॥

सारसान्वेषाय गुरवे सर्वकल्याणहेतवे ॥ ६

वाराणसीं गमिष्यामि चैत्रमासे ततः पुनः
यास्ये भवदादीनां दर्शनार्थं प्रयत्नतः ॥

पुनः पत्रं लेखिष्यामि यदा ... भावेष्यामि
फलं तु ... स्मरं सदा ।

५७पि 2-74

X भगवत्या दत्तं प्राप्य प्रश्नः को शीघ्रमहं प्रभो ।
यापयामि दिनं हन्त लोगन्तोऽत्र हेतुकः ॥

X प्रस्थास्योऽहमितो नूनं मून विंशति तिथौ ।
द्वाविंशे एकविंशे वा प्राप्स्यामि स्वदन्तिकम ॥

X अयदेव इति ख्यातो ज्ञातोऽसि तेन: परात्परः
आगामिष्यति साकं मे, स्थास्यति क्वापि मन्दिरे ॥

गमयामि दिनं नित्यं कदा तुल्याद्दिनं भवेत

X यत्र द्रक्ष्यामि पदाम्भोजं स्वामिदं नितरां सखी ॥

१८ को प्रस्थान का निश्चय
२१ या २२ को
श्रीनगर पहुंच
जाऊंगा

सर्वसर्वे प्रभो।

भवत्याः कुशलं शीघ्रं कं प्राप्तं श्रीमद्धेव। श्रीगुरु-
चरण महोत्सवे सुखादि समाचारं विज्ञाय सैद-
प्राप्ति अन्य वेदा च्युतिश्चेतरः शकं। निलम्बी
भवित्यर एक भावत्यः पत्रोल्लिखिते नि-
वेदः पुरवापितु कामस्तथैव चरामि।

स्वामिन् साकाङ्क्षैवेयं –
मदपूर्णत्वात् भाति वा।
तां त्यक्त्वा पूर्णता ग्राह्या
त्वया तिहैव दृश्यते या॥

प्रभो त्वया हृद्यानी कथयामि, या भवती स्वस्वामि-
वं [illegible] लिखितं स्वप्रकाशं स्वामि-
नमपि [illegible] येजाति। तथापि श्रीमद्
गुरोरीश्वरस्वरूपस्य [illegible] आवारधर्तः।
सर्वमेवैतत् मह [illegible] मिव प्राति भातिमे प्रभो
कथंकारं भवोदृशी [illegible] स्वात्मानं साधकको-
टौ निदधाति। यदि सर्वथा सर्वदा निद्रा
प्रतिभा भवती साधकात्वेन भवती।
परन्तु किं करोमि भ्रद्धानन्यापि मापि भवती
न मन्यते मम वचः भवा शासने मेव
स्वच्छन्दतया विचारयाति।

कर्तव्यकर्म यः परधर्मभीरोश्च कर्म यः
स बुद्धिमान् मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत्

दूरस्थापि हृदिस्थैव हृदस्थापि च दूरगा
त्वमेवैका प्रभो! भासि सर्वस्याकलतयोः सदा
(१)

तस्य भाग्यहतकस्य पृच्छ्यते
किन्तु! देवि! कुशलं हि साम्प्रतम्
यस्य क्वापि सकलार्थसिद्धिदा
त्वं स्थितासि मम दूरगा शिवे॥
(२)

भावुकं भाविकं भव्यं कुशलं क्षेमं भाविकं इत्यमरः।
नास्त्येव भव्यं न च भावि दृश्यते
सम्भावये वापि न तत्कदाचन।
विध्वंसविधौ दुःखौघविध्वंसविधौ पटीयसी
क्षेमङ्करी मीलितलोचना यदि॥
क्षेमङ्करि! त्वं न निरीक्षसे यदि (३)

आसन् पुरा सन्ति च येऽपि सन्तः
पुनर्भविष्यन्त्यपि भूरिभाग्याः।
तेषां समेषां महतां मतोऽयम्
अहैतुकः शाम्भवशक्तिपातः॥
(४)

मलस्य पाकादथ कर्मणः क्षयाद्-
रागक्षयाद्वा सुकृतस्य गौरवात्।
श्रीखेचरालादिमतः स हेतुको-
न शक्तिपातोऽभिमतो न चारतः॥ ५
(५)

INLAND LETTER CARD

...वं मानसैक मध्ये निरतिशये मायिककल्लोलो
होते, कुत्र कोऽपि स्वभावे स्वात्माश्रये । केवल
चैतन्यमात्रे यदपि भवति अपूर्णतायाः
चक्रं त्वां स्वात्मनि लीनीकरोति । अमायीयमीन
मायिकदेहे तत्तैव न [illegible], आत्मैव । वेश्मैव
शरीरमाने [illegible] । [illegible] शक्त्या [illegible]
[illegible] यत्र सा पूर्ण भवती ।
न येन [illegible] कर्मैः कोऽपि [illegible]
अमायं । शिवमार्गे [illegible] प्रकाश्यते ॥
आदि प्रमे । [illegible] निर्विघ्नं व्यवहारो
मायिकः, न तन्मात्र [illegible] भवन्ति [illegible]
पूर्ण: सहजः [illegible] स्वभावः ।
सोऽपि चैतन्य एव भवत: अतः कः सन्देहः ।
[illegible] एव संसारः अतः स्वात्मनि विहाय
[illegible] स्वरूपमेव व्यवहारोऽपि अव-
लम्बनीयम् ।
किं न भवती जानाति यदपि [illegible] प्रयतेहं
किन्तु [illegible] न भवती अपमेवकेवलं महान्
जातबन्धनः यद् दूरत्वं भावितुं [illegible] ॥

अस्मेव किं भावि [illegible] भूत्वाहं भावितं नाहं
यो भूत्वा [illegible] सोऽहं [illegible] वेऽपि । निरपति
सन्तेवं भवतामि [illegible] । निरञ्जनः ॥
नाहं [illegible] न सदृशं [illegible] ॥
स्वामी [illegible] यदैव [illegible] तदैव [illegible]
[illegible] सन्देहः । [illegible] सन्देहाव
यत् माये [illegible] अन्याश्रिमं वा कामिनी ते
एक एव महेश्वरः संवित्तत्त्वः इति
किं साधनं कः [illegible] ॥
कृत्वा कृत्वा मृताः एवं प्राप्तुं प्राप्स्यति किं पुनः ।
[illegible] [illegible] किं [illegible]
[illegible] [illegible] अन्यत्रापि
[illegible] प्रकाशत्वं [illegible]
[illegible] । [illegible] । शिवं प्रकाशयेत् । [illegible]
सद्बुद्धीयोगेः ॥ अस्तु पुनः —
मातुर्दिनं [illegible] [illegible] दिक्रम
पितृपुत्रं [illegible] करोति स्वस्वभावतः
तथापि [illegible] कुर्वन्ति [illegible] । [illegible]
[illegible] महादेवी [illegible]
[illegible] [illegible] कालानुसार ॥ [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]
यया त्वया कृतं [illegible] ॥

95 B 270

शास्त्रेषु इयमेव कथ्यते
या स्वरूपपरिदृष्टिरात्मनः ।
सैव भक्तिरपि गीयते शिवे
मन्द मध्य पर तीव्रभेदतः ॥
(६)

ईश्वरेण यदिदं प्रकाश्यते
स्वस्वरूपमथवा निरुध्यते ।
तत्र नास्ति ननु कारणान्तरं –
(शैवागमे ख्याते) स स्वतन्त्र इह भोगमोक्षयोः ॥
(७)

संविद्विमर्शान्न परं हि किञ्चित्
संविद्विमर्शो न शिवाद्धि भिन्नः
अतोऽस्ति सर्वात्मतया विमर्शो-
मोक्षोऽथ बन्धः किल भेदभासः ॥
(८)

तत्त्वात्मना कार्य-
कारणाद्यात्मनापि च
अस्ति देवो यथैवैकः
शक्तिभूते तथा प्रभुः ॥
(९)

अन्या तत्त्वसमीक्षास्ति बुद्धिव्यायामकारिका
अन्यदेव परं तत्त्वज्ञानं शान्तिप्रदं प्रभो! ॥
(१०)

मा जहीहि स्वमात्मानं स्वात्मा सर्वत्र सर्वदा ।
प्रकाशमान एवास्ते प्रियं वाऽप्यप्रियं भजन् ॥ (सर्वशान्)
(११)

भेदमेव पुरस्कृत्य ज्ञातुमिच्छन्ति ये नराः ।
ते भृशं यत्नमास्थाय नाप्नुवन्ति परं पदम् ॥
(११)

किं किं वाञ्छेम किं द्वाञ्छेम
किं त्वं जानासि नः प्रभो ।
त्वत्प्रसादादहं वेद्मि
वेत्त्यन्योऽप्याखिलो जनः ॥
१२

त्वत्कृपां काङ्क्षमाणोऽहं नेक्षामि विगतज्वरः ।
यथा यथा त्वया नाथोऽहं नटामि तथा तथा ॥
(१३)

तत्तद्भावरसव्यक्तौ तत्तच्छन्दो विनिश्चितम् ।
रसभावविदा, किन्तु त्वदाज्ञा सर्वतोऽधिका ॥
(१४)

देवि! त्वद्गतमानसेन रचिता येयं मया पत्रिका
सा प्रीत्यै तव भूरिभावभरिता भूयादवश्यं यतः ।
स्वातन्त्र्यामृतनिर्भरा शिवरसा सौहित्यमातन्वती- (संतोषं)
सद्यो निर्वृतिदायिकापि सरसा त्वत्प्रीतयेऽस्त्वालिवाक् ॥
(१५)

तवैव कस्यापि
रामेश्वरस्य

श्रीः

हृदि स्थित्वा यथा सर्वं हृत्स्थं बोधयसि प्रभो।
तथा बहिः पुरः स्थित्वा बाह्यं मह्यं प्रकाशय॥

प्रेषितौ तु मया पूर्वं पत्रौ ते गुरुस्तुतिः
~~[illegible]~~ किं मे [illegible] न प्राप्ता भगवत्पादगुरुस्तोत्रः
अन्यो मदर्थपत्रप्रेषणानन्तरमेव स्वयं भवता शीघ्रमेव
[illegible] प्राप्तव्यम् यदि न प्राप्तम्
तर्हि [illegible] पुनः प्रेषणीया इति [illegible]
यद्यपि [illegible] परन्तु किं [illegible]
[illegible] प्रेषितोऽहं [illegible] यतः
[illegible] कर्तव्यं भवति
[illegible] भवति
अर्थमेव
यद्यपि [illegible] न सर्वथा [illegible] सर्वत्र
[illegible]; तथापि [illegible] अस्ति
[illegible] अधिकारः। [illegible]
[illegible] प्राप्तस्य [illegible]
[illegible] विचार्यापि [illegible] दर्शने [illegible]

आपका कृपा-पत्र पाकर हृदय आह्लादित हुआ। किन्तु
आपकी अनुभूति में कभी मुझको कष्ट देता रहता है
आप मेरे ऊपर जो अतिरिक्त शील [illegible] आरोप
किये हैं यह मुझे पहले से ही आभासित था।
आप लिखते हैं कि [illegible] की कविता कोई [illegible] विशेष
पाप समझते हैं! बालक की अटपटी बात भी
एक महत्व रखती है इत्यादि — परन्तु आप गुरु
तत्व को हैं इसको विचारिये और स्वयं विचारिये।
और बालक यदि अटपटी बात को अटपटी समझता
है तो बालकपन नष्ट हो जाता है। मैं [illegible]
[illegible] की कविता को पूज्य स्वामीजी की तरह आदर
तथा [illegible] दृष्टि से देखता अपनी या और
किसी की कविता से न्यून स्थान नहीं देता यदि
उसकी शुद्धि न चाहता। अतः इस मार्मिक
दृष्टिकोण पर ध्यान दीजिये कि किसी के हृदय
की आत्मिक झंकार को [illegible] करना कितना
पाप है और वह भी ईश्वर तथा गुरु विषयक
पवित्र झंकार है। [illegible] की शुद्धि [illegible]
के लिये अत्यन्त सुलभ होता है परन्तु कविता

किं करोमि, किं साधयामि, किमत्र प्रयत्नं च यतेयम् ।
अस्ति वा द्रव्यप्रयोजनं तत्साधकं बहु वस्तु किन्तु
किमत्रापि भवति न किंचिदपि ।
एवं संवितो विटपिनमिव चित्तं नोत्कण्ठते न प्रधाव
ति निरस्यते नवा किञ्चिदपि बहु मन्यते ।
भवति च वास्तव-शान्ति सुखसन्ततिं भवन्तावदिह
स्थिते यदि यथासमयं शरीरस्योपयोगिवस्तु
भवदाभिः पादिकालेन निर्वाहिते न चेद् यदि लाभे
भवतु किन्तु अस्ति समवतः एतादृशस्य सुसन्दर
समयस्य । नाभिलाषिते सर्वं प्राप्तं भवति, नवा सा
पादेयानापि सार्वकालीना सुस्थिरता भवति
तिष्ठति । अहं स्थानमिव मनः कर्तव्याकर्तव्य
विचारे विमुखमेव प्रतिभाति । एवं पुनः
अदृश्य जीवितेन मया किं साधनीयं न चे
साधनतया किंचिदपि प्रतिभाति ।
अतः परं निरस्यामि अजगरवृत्तिमिव वर्तनं,
मद्यं सेवमानमिव उन्मत्तः स्वच्छन्दतया याति ।
[illegible] भवतः निकटे यदि स्थिति भवेत् [illegible]
तदा [illegible]

शास्त्रीयव्यवहारलौकिकं कुर्वाणस्य गच्छति दीवे [illegible]
यं कालप्रारब्धः ।
अस्तु वा तस्यै शान्तिः स्वान्तर्गामप्रच्छन्नोत्
पाति लयादि निरतानवधार्य कोऽप्यर्थः श्रीजय
तिहं पश्यामि किंचिद् विशेषकर्तव्यमेव
तथा किञ्चित्किञ्चित् कुर्वाणः कालं यापयामि
परं चतुर्दिशि पर्यन्तमपि समुद्रवक्रशयन [illegible]
विलोक्यमानमपि [illegible] प्रत्यहमनुभवामि ।
यथा प्रतिदिनं जीवामि [illegible] तथा स्वभाव
भूतमेव तदापि [illegible] नायकं नितान्त
किमपि । यथा मे प्राप्ति सन्तोषो निजाविद्यया, निजांशे
निर्विकारशोक, तथैव निजयोग्यास्वयं [illegible]
[illegible] । एवं श्रीमद्गुरुपादैः [illegible]
[illegible]

५५ 44 A 268

को शान्ति [illegible] मैं [illegible] करती हैं। [illegible] आपको
पूर्ण रूप से तब पता चलेगा जब मूल और
संशोधित कविता वाली को ध्यान से पढ़ेंगी
। दोनों में आकाश पाताल का अन्तर हो गया है
[illegible] को इससे आपके मैं कोई कहे
सकती था जो मैंने कह कर ली है, क्योंकि [illegible]
[illegible] कि अनेक नाम [illegible] का
नाम लिख दिया है और उनको होश भी है
प्रतीत नहीं होता था मैं समझती थी कि
यह सब प्रभु जी की ही [illegible] प्रतिमा से
हो रहा है। अब तो अब इन बातों से और [illegible] देती
है। परन्तु उन बदलने में मुझे बहुत कष्ट का अनुभव हुआ
है [illegible] मैं आप भी कहूँगा और कहती रहूँगी।
[illegible] मेरा [illegible] प्रणाम
कहियेगा। आपसे मैं न प्रणाम न आशीर्वचन नहीं
कह सकती क्योंकि आपकी [illegible] मुझे
आनन्द [illegible] मेरे [illegible] मेरे हृदय में [illegible]
[illegible] करती है। मैंने अवश्य कहा था कि मैं आऊँगी
परन्तु मैंने उनसे प्रार्थना की थी कि मैं आश्रम में ही
[illegible] अहर्निश [illegible] और कहते
[illegible] है आप [illegible]

मैं आज कल "श्री [illegible]" की समाधि में लगा हूँ तब से आज तक
उसे [illegible] में बैठा था। [illegible] भी आपने
नहीं [illegible] है।
प्रभु [illegible] प्रतीत होता है कि [illegible] में भी मुझसे
बढ़कर [illegible] होगा [illegible] अद्भुत
अद्भुत [illegible] मैं [illegible] और प्रतिदिन तीन
चार घण्टा करता हूँ सचमुच मुझको [illegible] से बहुत
सन्तोष है। आपको भी [illegible] होना चाहिये [illegible]
को भी [illegible] है परन्तु पूर्ण सन्तोष नहीं है ऐसा मुझे
प्रतीत होता है। [illegible] है यह तो आपका ही हृदय
कहेगा वही प्रमाण है। प्रभो! मुझमें दोष भी बहुत
से हैं परन्तु वे दोष भी मुझे [illegible] करने में [illegible]
असमर्थ ही पाते हैं। आप मेरे दोषों पर ध्यान न देकर
मेरे ऊपर कृपा दृष्टि रखेंगे और मैं क्या कह सकता।
मैंने आपको पहले श्लोक वाले पत्र में अत्यन्त अनुभव के
रहस्यमय बात लिखी थी परन्तु मैंने देखा आप उस
को [illegible] आह्लादित नहीं हुए इसलिए
[illegible] में लिखा और उन श्लोकों को कुछ [illegible]
नहीं [illegible] इसलिये श्लोक लिखने में मेरा मन
उदास हो गया था। [illegible] समय नहीं [illegible] आपके
पास [illegible] बहुत से रहते हैं मैं [illegible] आप भी [illegible]
[illegible] आपको पत्र [illegible] देता हूँ।

(९)

अनिर्देश्याद्यस्माच्चलति पवनः प्राणपति यस्
तथैवाहं शब्दो नदति सकल प्राणिषु पुनः।
इदं सर्वं दृश्यं भवति पुनरा भाति सततं
तमात्मानं वन्दे जनन मरण क्लेश रहितम्॥

अन्तर्बहिर्व्याप्यहमेव चैको
दृश्योऽप्यदृश्योलघु दीर्घ रूपः।
कुर्वन् कुर्वन्नपि सुरुप्रोहं
जीवन् सुखी भामि शिवोऽद्वितीयः॥

देहे ह्यनित्ये क्षणभङ्गुरेऽस्मिन्
देहात्मभावेन वसन्ति मूर्खाः।
शिवात्म भावेन वसन्तु विज्ञः
शिवे तते, स्ते देह मिमं तु धीरः॥

नशुद्धिमायाति कदापि देहो
नाशुद्धिमयाति कदाचनात्मा।
विमृश्य चैवं परि हाय मत्वं
देहे, विदेहो भव विश्वरूपिः॥

(१०)

आपके आनन्द वर्धक पत्र से प्रेरित हो
कर आपसे बातचीत करने के जैसे
मैं यह सब जो जो मन में आया
वह लिखवा लिया हूँ। आप के
समक्ष मे बातें करने की अब कोई
आवश्यकता नहीं है परन्तु -
"ते श्रोता वक्ता सम शीला -
सम दर्शी, जानहिं हरिलीला"
अन्त में पुनः गुरुदेव
को प्रणाम तथा देवी जी को वन्दन
करता हुआ आपको भूयोभूयः प्रणाम
करता हुआ -

आचार्य रामेश्वर

"ज्ञानियों के वक्ता और श्रोता दोनों शील
मौन स्वभाववाले होते हैं। क्योंकि सम
दर्शी होते हैं। बुद्धि उक्ति भेद रहता
नहीं है। सब बातों को भगवान कीलीला
ही समझते हैं।"

परम पूजनीय श्री देवी जी प्रभा जी
दैनन्दिनिक प्रणाम स्वीकार करें। तन्त्रा-
लोक के तेरहवें अध्याय गुरुजी से
सम्पूर्ण पहले पढ़ लिया है। परन्तु
परन्तु आप जानते ही हैं कि अनपढ़
पढ़े लिखे लोगों को कितनी और
कैसी बुद्धि होती है। इस लिए मैं
प्रार्थना किया था उसके संक्षेपमय
आप कृपा करके लिखते तो मैं
बहुत आभारी होती। अतः आप की
जैसी कृपा मेरा तो आप लोगों की
दया पर ही काम होता है।
श्री १०८ स्वामी जी जब
यहाँ आये थे तब उनकी मैं बहुत सेवा
करती थी इस लिए भी मेरे ऊपर
कृपा होनी चाहिए। विशेष क्या
लिखूँ। आप को तो याचना करना
ही जानते हो। हमारे गुरु जी यह करने
में असमर्थता व्यक्त करते हैं। और कहते
हैं कि श्री प्रभा जी कर सकती हैं। आपकी परम
शिष्या ज्योति

वह अनुभव हो जाता है। हां। यह बात अन्य
है जो शिष्याभास है। शिष्य नहीं है
उसको तो इसके लिए जन्म-जन्म
लगता है। जैसे कि मैंने अपने मित्र
को पहले लिख चुका हूँ।-

नमया क्रियते शिष्यः कृतः शिष्यो न कश्चन।
शिष्यता मिच्छति सद्यो दीयते गुरुता मया॥

यत्रास्ति शिष्यता शुद्धा गुरुता तत्र जायते।
मद्दर्शनादितीवन्तु प्रत्यक्षी क्रियते मया॥

प्राप्यो नास्मि न बोद्धव्यो
न स्मर्तव्यो न विस्मृतः।
प्रापको दर्शकः स्मर्ता
नित्यः सर्वोऽस्म्यहं विभुः॥

266

(२)

"नमे जन्म, कुतो मृत्युः
सर्व रूपस्य सर्वदा।
यस्यास्ति जन्म तस्यैव
मृत्यू रोगो भयं तथा॥"

"अवेद्यो वेदकः सर्व-
वेद्यानामस्म्यहं विभुः।
घ अनाद्यनन्त एकोऽपि
भिन्नो देहैर्विभामि च॥"

अनादृतक्रमो धृत्वा
महाविदेह धारणाम्।
देहे देहस्य चक्रं च
सिञ्चन् योगी जयेज्जगत्॥

(१)

आत्मानं सततं वन्दे
सर्वरूपमरूपकम्।
निराधारं निराकारं
नित्य सिद्धं महेश्वरम्॥

(२)

260

(३)

नोर्ध्वस्थोऽस्मि न चाधःस्थो
व्यापकोऽहं न मध्यगः।
सर्वरूपोऽप्यरूपोऽहं
भामात्रं स्पन्द संयुतः॥

(२)

अनाकाङ्क्षः स्वरूपस्थः
साकाङ्क्षो जगदात्मकः।
उन्मुखो विषय ज्ञाता
स्व प्रकाशोऽस्म्यनुन्मुखः॥

(४)

ज्ञान सिंहासनासीनो
देहराज्य प्रशासकः।
धी मन्त्री प्राण द्वारोऽहं
राजा भामि महेश्वरः॥

(५)

गुरुर्नौमि शिवं साक्षाद्
देवीं श्री शारिकां तथा।
प्रभो ! त्वां प्रतिभां वन्दे
[illegible]॥

परम पूज्ये ! करुणामयै हृदये !

आपके बहुत से पत्र पढ़ा होगा किन्तु आज का यह पत्र पढ़ कर मैं अत्यन्त अतिशय निरवधि आनन्द मग्न हूँ। क्योंकि आपका परम रूप इस पत्र में विकसित हो आया है। आपके इस पत्र से आपका पूर्णातिपूर्ण तत्व में प्रतिष्ठित हृदय कृपा से उभर आया है। आज तक सन्देह आदि विषयों की आप चर्चा करते रहे। इस पत्र में आपका केवल सत्यं शिवं सुन्दरं प्रगट है।

मैं जो अपंग अशक्त आदि पत्र में लिखा था, वह केवल व्यवहार में पत्र-पत्रोत्तर आदि चलता है। इस लिए मैं ऐसे ही सब लोगों को यही कहता हूँ। इसी लिए पत्र में भी लिखा गया गुरुदेव की कृपा से आप दोनों देवियों के अनुग्रह से —

कृ. पू. उ.

यद्यपि आपने इस पत्र में नहीं लिखा है कि उत्तर दीजियेगा। आप तो केवल मेरी छाया पृथ्वी पर रखने की इच्छा प्रगट की है। परन्तु इस पृथ्वी पर जो प्रगट होते हैं। वे सब चल देते हैं। फिर दूसरे रूप में प्रगट हो जाते हैं जैसे हमारे गुरुदेव तथा देवी जी प्रगट हैं। अब मैं "त्यज धर्ममधर्मं च" इस पर कुछ आपकी दी हुई प्रतिभा से कहना चाहता हूँ। आप अवश्य सुनेंगे और गुरुजी महाराज दे[illegible] भी प्रसन्न होंगे। मेरा कहना यह है। जो 'त्यज' का अर्थ है, गुरुदेव मुख से जो अर्थ निकला है त्याग देना चाहिए यही सत[illegible]। शास्त्र गुरुओं का हृदय है और उसका [illegible] गुरुदेव का मुख है। यहाँ पर त्याग [illegible] नहीं कहने पर शिष्यों की बुद्धि में वह [illegible] अर्थ अपने आप [illegible] देवी [illegible] रहने को अनुभव में आ सकता है [illegible] कहने पर जो वास्तविक [illegible] जैसा उसको गुरु मुख से [illegible] उसको

41 A
L65

प्रकृतान: श्लोकौ: सर्व प्रयत्न [illegible]

[illegible] प्राति [illegible] | इति श्लोक [illegible]

[illegible] भवं [illegible] [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] पुरुषार्थ [illegible]

[illegible]

[illegible] | [illegible]

[illegible]

[illegible] | [illegible]

[illegible]

41 A
L65

अनुभवगोचरतां न याति [illegible] परन्तु [illegible]
[illegible] भाव [illegible] [illegible] भाव च [illegible]
[illegible] । [illegible] ।

[illegible] | [illegible] प्रदेशे [illegible] अनुभव: | अत्र
[illegible] श्लोके प्रारम्भत: | [illegible]
[illegible] अन्य [illegible] | प्रारम्भे [illegible]
[illegible] | [illegible]
[illegible] श्लोके [illegible] ।

[illegible]
[illegible] इत्यादि

य: [illegible] परानन्दमय [illegible] प्रकार [illegible]
[illegible] इत्यादि [illegible]
[illegible] तत एव [illegible] अन्त: [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

L45 413

प्रभो त्वं रश्मिरिव मे प्रातिभज्ञानदायिनी ।
सम्प्राप्ते नैव शब्दस्य स्वभावस्तत्र मे हृदि ॥

इदानीमेव भवतः पत्रं प्राप्तम् । इदमद्य लेखनं कृतं मया [illegible] पूर्वं श्रवणीयोपाध्याये चासीत् श्री स्वामिपादपद्म प्रेक्षणार्थं श्री रत्नेश्वर जी महोदयेन दत्तम् । अतः प्रथमं श्रीमते विश्वनाथाय विश्वपावनाय [illegible] भवता वक्तव्यम् यत् यस्मै दत्तं [illegible] वासुदेवाय भवता रत्नेश्वर [illegible] तस्मै [illegible] दातव्यं भवता तत्प्रेषणीयम् । तदर्थमेवेदं पत्रं पत्रे लेखनाय पूर्वं उपाध्यायेन मया लिखितम् । शक्तिम् अतीव मम यथा स्यात् तथा विस्फारयन् शक्तिं [illegible] ते नास्मिन्नेव पत्रे प्रायः [illegible] ~~[illegible]~~ विशेषकमेतत्पदं मे विस्फारिकया । इति विज्ञाप्यते ।

[illegible] आसीत् [illegible] । [illegible] आसीत् यत् एते [illegible] श्लोकानां परमार्थं नु भवेत् तथाविचार्य [illegible] न भवदादीनां भवेत् तत्र न चमत्कार [illegible] कोऽपि स्तुतेः श्लोकाः आसीच्च [illegible] आराध्यादेवीजी महोदयाः

41 B L64

पहला मोड़ FIRST FOLD

नमः श्रीमत्यै प्रमदेव्यै ॥

पश्यन् भवन्मयमहं सकलं हि विश्वं
ज्ञानक्रियात्मकधरणीं भवदङ्गभूताम् ।
कुर्वे सदा भवदभीप्सितमेव सर्वं
नौमि प्रभे ऽनवरतं तव पादपद्मम् ॥
(१)

समस्तसम्पत्प्रविकासिकायै
मनोऽनुकूलं भवभूतिदात्र्यै ।
नमः प्रभायै जगदम्बिकायै
विमुक्तिभुक्त्यात्मकरूपवत्यै ॥
(२)

क्रियात्मिकायै भवभावदात्र्यै
स्वभावभानोद्गतशक्तिशान्त्यै ।
प्रवर्तिकायै भवभीतिहन्त्र्यै
वरप्रदात्मिकायै ननु कष्टदात्र्यै ॥
(३)

नमः प्रभायै करुणैकमूर्त्यै
नमोऽनमन्ते सदभिन्नशान्त्यै
नमः [illegible] परायै सकलार्थवाचे
स्वयंप्रकाशप्रमितिविग्रहायै ॥
(४)

यस्यास्ति यः प्रियतमो भुवनेऽथवान्यः
तस्यास्ति सः स्वहृदयस्य सदा समीपे ।
दूरस्थापि भूतमनसस्त्वदभिन्नरूप-
स्यात्मस्वरूपपरिरम्भणमेककार्यम् ॥

प्रोषितपतिहृदयस्यापि
न प्रयुञ्ज्यं चलितं मया ।
स्वात्मानुचिन्तां वा त्यज्य
किं कुर्यां हे प्रभे! वद ॥
(५)

समागतस्य पत्रस्य ह्युत्तरे चोदितं त्वम्
किं नु नारदीयं जानेऽहं पूर्वं दोषे वेदान्तवा ॥१
शिवः शङ्करश्च सर्वस्वं मे शिवरूपतः
अतस्तत्कुशलाकाङ्क्षी संचिन्तयेयं कथं नाहं ॥२
माधवानन्द प्रभोद्धन्ते स्वेच्छया परस्यामि सत्तम्
पुनरन्यत्र कुत्रापि, प्रेष्यतेऽतः स्तोत्रगुरैः ॥३
गुरोर्जन्मदिने ~~स्य~~ पाठः सर्वकल्याणकारकः ।
स्तुतेरस्यास्त्वया कार्या ममध्यर्माभिवृद्धये ॥४

प्रेमास्त्वया नैव कदापि कार्य
शङ्कास्वामिन् स्वरूपे मयि किञ्चिदारोपिणी ।
यथा त्वं चिन्माद्य विभाति शुद्धः
त्वं मे स्वरूपान्नेदं कदाचिदन्यः ॥५

कृपामि केवलं कराणि किंवा
शिष्टं न कोऽप्यदुरु दर्शनेन
अतो वयं सर्वहितस्य हेतुम्
कुर्मः प्रसादयामो गुरुमेव केवलम् ॥६

नित्यानन्द सं. वि.
[illegible]
[illegible]

श्रीगुरवे नमः ।

तस्याप्रतर्क्यविभवस्य महेश्वरस्य
पादौ नमामि नयनामृत लक्ष्मणस्य ।
देवस्य यस्य महतः करुणाकटाक्षै-
रालोकितोऽहमिह विश्ववपुर्विभामि ॥
(१)

प्रत्यात्मभूतः परमात्मरूपो
नित्यः शिवः सर्वसुलक्षणोऽसि ।
लोकैरलक्ष्यो विदुषाभिलक्ष्यो
विलक्षणो लक्ष्मण उच्यसे त्वम् ॥
(२)

अनन्तशास्त्रोदधिमन्थनाप्तं यदात्मतत्त्वं परमामृताख्यम् ।
तद्वर्षिणी यस्य कृपाङ्गदृष्टिः स त्वं शरण्यः शरणं ममासि ॥
(३)

शिष्याननेकाञ्जगतः समुद्धरन्-
नासीत्पुरा यः प्रगुरुर्गुरीयान् ।
यो लक्ष्मणो लक्ष्मण एव नो गुरुः
पायात्समस्तान् शरणागतान् सः ॥
(४)

शिवस्वरूपोऽपि जगत्स्वरूपः
स्वात्मस्वरूपोऽपि परस्वरूपः ।
नित्योऽपि यो नित्यमनित्यरूपस्-
तस्मै नमः श्रीगुरवेऽद्भुताय ॥
(५)

दृष्टप्रभावं परिमुच्य देवं
स्तुयात्कथं दासजनः परेशम् ।
युष्मत्कृपापाङ्गनिपीतपापा
भवन्ति सद्यः पशवो महेशाः ॥
(६)

40 A
264

नमः श्रीगुरवे.

अरूपं यस्य वै रूपं
सर्वरूपतया स्थितम् ।
अगाधं तमहं वन्दे
स्वगुरुं लक्ष्मणाभिधम् ॥

विकल्पबीजमद्वैत-
मविकल्पतया स्थितम्
नित्यं वन्दे सदाभान्तं
स्वं गुरुं लक्ष्मणाभिधम् ।

~~शारदीं~~
तां विद्यां परमां शक्तिं
देवीं श्रीशारिकामहम् ।
नित्यं वन्दे सदा स्वस्थां
कारुण्यरसनिर्भराम् ॥

क्षमां क्षमायै नौमि
महालक्ष्मीं सरस्वतीम् ।
यस्या दर्शनमात्रेण
सतां शान्तिः समेधते ॥
ह्लादते हृदयं सताम्

40 A
264

गतेषु कालेष्वपि चाग्रिमेष्वपि
न वर्तमानेषु विभिन्नमातरः ।
त्वमेव चैका निखिलस्वरूपिका
विभास्यभिन्नापि विभिन्नरूपिका ॥

(७)

गतस्पृहस्यापि शरीरिणो मे
विजानतस्त्वां निखिलस्वरूपाम्
उच्चावचं भाति जगद् विभाति
यतोऽस्त्यविद्यापि ममेश्वरूपम् ॥

(८)

न यस्य बन्धोऽस्ति कुतो विमुक्तिः
न चास्ति जातिः कथमेतु मृत्युः । (अजातवृत्ति)
विकल्पजातानि विभान्ति संविदो [illegible]
विवेचने विश्वगतानि निष्फलानि ॥

× अति शीघ्रं त्वया देयं पञ्चमहं प्रभो शम्भो)
मनाहं गुरुकृपायां दत्तं ज्ञास्यामि निश्चितम् ॥
× निश्चयोऽयमे महानस्ति त्वदङ्गतं हि तद्धिते
त्वदाकारं त्वया देवि येनाहं स्यां प्रसंशयः ॥
× अस्य पत्नी तवाहमस्मि श्रीहृदयोऽस्मि सुरवी प्रभो
इति वक्तुं न शक्नोमि आनन्त्यैकं मनो मम ॥
नीरूपायां सरूपायां त्वयि भक्तिः प्रभो मम ।
अस्ति सद्यो नवनवा परानन्दाभिवर्षिणी ॥
? भुक्तीच्छा गलिता योगान्मुक्तीच्छा गुरुतो गता
अस्म्यहं [illegible] चास्ति भक्तिरः [illegible] परस्परम् ॥

३७ B.

किं वर्णयामो महतश्च तेषाम्-
भाग्यं भवत्पादरजोऽनुरागिणाम् ।
पुष्णाति संभारशतैरदृश्यो-
ऽप्येषां भवान् दृक्पथगोचरः शिवः ॥

(७)

यद्दर्शनेन विध्वस्तशङ्का मायासमुद्भवा ।
लब्धं लभ्यं सतां सद्भिस्तस्मै देवाय ते नमः ॥

(८)

भू यद्दर्शनेन शङ्कापि यातः संवित्स्वरोपणा ।
प्राप्यं प्राप्तं मया देव नमस्तुभ्यं त्रिशूलिने ॥

(९)

स्तोतुं त्वां कः समर्थोऽस्ति प्राज्ञबुद्धिप्रवर्तकम्
किं तु प्रभोः प्रसादार्थं ममैतद्वाग्विजृम्भणम् ॥

(१०)

किं न दत्तं त्वया मह्यं दर्शितं किं न मां प्रति ।
तव स्तुतिपरैवेयं वाणी मे भवतात्प्रभो ॥

(११)

63 39B 263

श्री:

अयि परमानन्द सन्दोहाधायिनाः।
प्रभो विजेताम्।

प्राप्तानुत्तरवैभवस्य सहजानन्दो सदा-
संगिनो -
भेदाभेदविभासनैकवपुष:, सर्वात्मन: -
स्वात्मन: ।
लीलाकल्पितकार्यकारणगुणः -
स्वातन्त्र्यशक्त्यान्वितम्
भूतं भावि भवत्प्रियाप्रियनिभं -
सर्वं स्वकीयं महः ॥
(१)

भव भाक्ति प्रभावेण
सर्वभाव समान्वितौ
अन्तर्यामिथि: कर्मी — अपि मन्ये लिं भवेती (भवत्यप्यालि मन्ये
भवभाव समान्वितौ ॥
(२)

(तथापि) स्वाशाला स के लोकसे
वयाऽशकोऽवध्यालि: ।
किन्तु न प्रभुतायुक्ता
प्रभूताप्रस्तः प्रभो ॥
(३)

39 A
L62

प्रकाश्यानि विषयः सर्वे:
प्रकाशाधीन एव सन्ति
अतोऽन विश्वमेतस्मि
प्रकाशरूपकाणि व्यते ॥
(४)

सन् प्रकाशः सदैवास्ति
भाशक्तं त्वोऽकिञ्चन ॥
(५)

शिष्यके धार्यते ... मा
स्थापयेते नाथे रसतैव
स्वप्रकाशमनो नित्यं
आत्ममनः स्वभावतः
किमहं विस्मृतामेऽस्मि ? (किमेमी कापि वैरस्थिति)
नाथं विस्तृतामेति
आत्मा लोके रोगार्थे ॥
(६)

निर्मला वासनार्त तेजा
भवत्यमान शरीरेभ्य ।
अज्ञानेन हृतानां हि
पशूनां भेददर्शिनाम् ॥
(७)

येषां मायापि विद्यैव
विद्येव माया स्वरूपिणी
निर्मलां सम्यग् वाणि
वासनां ते विदन्ति मे ॥
(८) (न विदन्ति ते)

सूर्यो राज्ञे न जानाति
देहे पश्येत् पुनः कथम् ॥
अपूर्णः पूर्णतां मिच्छति
शुद्धश्च शुद्धी प्रपश्यति ॥
(९)

सर्वथैव विपर्यासात्
शङ्कर स्वामात् रोधिकां
शङ्कराय भव मार्दवे
भयाच्चैव प्रवर्तते ॥
साशंकं शङ्कमानाय
पश्यार्थे अन्तः ...
केवलं तस्य गो न जानाति
स्वस्वादन्यत् किञ्चन ॥
(११)

सच्चिन्मोदं जिताशेष-
विश्वविशान्त मूर्तये
उमेशाय नमो वाच्यं
गुरवे लक्ष्मणाय ते ॥
(१२)

मातरं शारिकां देवीं
प्रार्थये मोहनाशिनीम्
प्राणवीणां प्रणम्य वन्दे
सर्वसिद्धि प्रदे प्रभो ॥
(१३)

गुणदोषविभागज्ञ
दोषो मे माये विस्तृत
पश्यन्नाति गुणः कश्चित्
तं त्वयापि ... ॥
(१४)

अथ प्रकारान्तरेणापि समस्तविश्वरूपतानमोऽर्थकः तत्परतोऽपि दृश्यार्थवाचकः
श्रीमदभिनवगुप्तपादाचार्यैरपि अनुमतमित्याह समुदायरूपेण [illegible]
तन्त्रवटधानिकायाम्

पञ्चदशाह्निके श्रीमदभिनवगुप्तेनापि ॥ [illegible] ॥ इति श्लोकेन
अयमेवार्थः प्रकाशितः

इदानीं [illegible] तृतीयार्थमपि [illegible] तत्त्वतः
श्रीदेवीप्रश्नं तन्त्रविषयकमुपक्रम्य भगवान् [illegible] भवति तत्र
[illegible] तृतीयमते
[illegible] अत्र मम तृतीयमते एव सम्पूर्णं [illegible] विद्यमानमपि
अनुत्तरं विश्वरूपात्मकं [illegible] विमर्शः [illegible]
[illegible] च [illegible] स्वस्वकार्यं [illegible] भवति
[illegible] सृष्टिस्थितिसंहारतिरोधानानुग्रहात्मकं
अहं [illegible] पञ्चकृत्यं
[illegible] स्वातन्त्र्यशक्तिरेव [illegible] तस्य तृतीयमते [illegible]
[illegible] ॥ योगराजेनापि ॥ [illegible] एव [illegible]
इति [illegible] ।

[illegible]

~~अतः शैवयोगः नहि संन्यासादि आश्रमे नियमः~~

परिग्रहेण

अतः शैवयोगस्य आरम्भः न संन्यासादि कालीनमेव ब्रह्मचर्यादि [illegible] । [illegible]

नहि प्रवर्तते योगाभ्यास गृहस्थाश्रमेऽपि उपविश्यैव [illegible] विधीयते । किं तु

~~[illegible]~~ आह्निक सकल कर्माणि समाप्य [illegible] प्राणायामयोः प्रत्येकनुष्ठे [illegible]

[illegible] स्वप्ने सुषुप्तौ च [illegible] भवनेनैव । विधीयते । [illegible]

प्राणिवृत्ति [illegible] लौकिक [illegible] धारणायाः वर्णितं [illegible]

[illegible] ~~[illegible]~~ [illegible] प्रयोजनमिदमेवास्ति [illegible]

[illegible] प्रविश्य [illegible] वेदनम् ।

[illegible] ईश्वरस्वरूप [illegible]

[illegible] इन्द्रियेभ्यः एव मूलम् अस्ति [illegible] । विश्वस्य प्रति परमाणु

[illegible] अतः [illegible] ईश्वरादि [illegible]

[illegible] परमाशिव [illegible] सर्वतः [illegible] प्रवेशादेव

[illegible] अतः [illegible]

न [illegible] शतपथ [illegible] प ११ श्लो. १.८२

38A

L61

७०

चतुर्थं चैतिरेखं तन्त्रं शास्त्रस्य देमाप दृश्यते यत् इदं समस्ते

…. स्वच्छं पर स्वात्मोभिन्नौ … अतः स्वात्मे द…

… प्रतिबिम्बं … प्रकाशते । प्रत्यभि …

… सूत्रे तद्दर्शनं मानविकरोति

स्वच्छं पर स्वात्मनि विश्वं … ।

… श्री मत … प्रतिपादितम्

तेन संवित्ति मुकुरे विश्वमात्मानं मर्पयत

नाथस्य वदतो … विमलां विश्व रूपताम् ॥

… उपायप्रकरण … कारितम् । अस्य शास्त्रस्य … प्रकरणे … प्राणापानयोः … । एकस्मिन्नेव प्राणापान संचारे एक … अकलनं प्रवृत्ति … भवति अक्रमकालतः । श्री मतो … देव्याः … इति … प्रकटीकृतम् ।

एवमेव … प्राणसंचारे … विज्ञानकालास्ते … इति …

शास्त्रे ।

37B 460

…विकल्पदशामनुभवति अन्तर्विषये विज्ञानमैरवे तन्त्रेऽप्युक्तं … स्थूलरूपस्य भाषोत्यादि

ॐ

इत्थमेव स्वात्मानन्दं … योगी स्वात्मानन्दं विहरति इयन्तु सुखजनक विषयस्य वार्ता। भयङ्कर दुःखप्रदा विषय समागतेऽपि अयं तावत् योगी दुःखेन … स्वात्मानन्द … मेवानुभवति। शिवदृष्टौ सोमानन्दपादा … दुःखेऽपि प्रविकासेन,, तथा श्रीमत् … महामाहेश्वराचार्यो … पराशिवदर्शि … दुःखेऽपि एव … चमत्कारः,,

मुख्यं
त्रिकदर्शने श्रीविज्ञानस्य शास्त्रस्य शक्तिपात विषये … शिवशक्तिपाते न साधनान्तरमपेक्षते स्वतन्त्र एवायं शक्तिपातोऽयं नाधिकारि विशेषमपेक्षते यतो लोके … निन्दनीयोऽपि स्वतन्त्रशिवशक्तिपातेन प्राप्तशिवभावः … दृश्यते दृश्यते च … समपन्नोऽपि … पातरहितः भेदप्रथयाऽऽक्रान्तः संसारिजनैः सह संसारे दुःखबहुलमनुभवन् कालं यापयतीति। तत एव शिवशक्तिपाते न साधनान्तरं पूर्वकर्म वा कारणम्, तथैवोक्तं मुक्तं … आधिकारी भेदं … स्वतन्त्र भगवत महेश्वर … त्रिकेऽपि … इति

इत्थं त्रिकशास्त्रं तन्त्रे … यत योगसाहित्ये ज्ञानमेवं … साहित्ये योगावर परमार्थमार्गदर्शक भवति नतु तर्कसिद्धं शुष्कं … ज्ञानम्, तज्ज्ञानस्य नास्ति प्रयोजनमत्र उक्तमपि अतएव … तत्त्वज्ञानी योगी सर्वकर्माणि ज्ञानानि … परीक्ष्यैव करोति अत एव … कर्माणि … व्यवहरणमेव योगि … मध्ये … प्रवेश एव … योगी। विशेषोऽयमत्र … यत … अयं सः … सा … तत्त्वैव … ,,

37A 2669

रहस्यागमादिनाम्नाभिहितस्यास्य तन्त्रशास्त्रस्य बीजं फलं चाहंपरामर्श एव।
अत एव शक्तितेव उक्तं पराहंपरामर्श एवास्य शास्त्रस्य भित्तिभूतः।
तन्त्रशास्त्रमेवास्मिन् व्यावहारिकजीवनेऽपि वर्तमानान् स्मर्तॄन् अनुभावयितुं शक्नोति
भगवतीं परां शक्तिम् नापरम्। शास्त्रस्यास्येदमेवापरं शास्त्रान्तरेभ्यो वैशिष्ट्यं यत्
भववान् कस्यांचिदपि स्थितौ स्थितः कामप्यवस्थामनुभवन्तः कामपि दशामनु
भवन्तः स्वात्मसाक्षात्कारं कुर्वन्तु। विशेषापरसम्पन्ना एव कुर्वन्तु कायन्तु
स्वात्मसाक्षात्कारं प्राप्नुवन्ति शास्त्रमिदं स्पन्दतत्त्वविवेचनात्मकमार्गेण प्रोत्साहयति।

तत्त्वविदुषां भक्तानां अन्यसाधारणजनानां व्यवहारदृष्ट्या विभेदा एव। पश्यन्तु भव
न्तः शब्दस्पर्शरूपरसगन्धादीन् विषयान् स्वात्मनः पदे पदे अन्यसमानं दृष्टिं
विनिद्रयि नान्यान् मन्यन्ते पश्यन्ते च योगिनः इति प्रत्यक्षं तथैव प्रमाणेदं तन्त्रशा
स्त्रेण साक्षात्कारस्य तादात्म्यं मनुते उपदेशति च विषयग्रहणे कामपि
धारणां तेषां योगिनः अमुं शब्दादिकं समाश्रित्यैव शाम्भवा स्थितिं सम्प्र
भवन्ति स्यातिं सहजतयैवोपलब्धाः सर्वेषां प्रमातॄणामिमे विषयाः। के
एतेषां वास्तविकं रहस्यम्। भावादेत्य एतान् गृह्णन्तः स्वात्मनः समवाप्नुवन्ति
स्वात्मानं जीवं संसारिणं बहिर्भावं च मन्यन्ते ज्ञानिनः।

38

इदमप्यत्र प्रश्नः: आन्तिकयोगमासेवमानोऽपि योगी कथं केन कृतेन च
आसां तत्साक्षात्काराणां सर्वज्ञतानुभूत सुखदुःखमयसंसारित्वप्रदान दशाजां बन्धने नापतति अन्यो
यदि वहिरन्तरपि नरूढीकरोति नानुभवति च संसारितां स्वात्मनो नेति।
यावत् सत्यं स्वानुभवं न प्रकाशयति सम्प्रति अयं योगीराजः सर्वविषयग्रहणसमर्थ प्रथमाभासेन सा
नुसंधाने तस्य महतो विषयग्रहणे स्वात्मनमेव स्मारयति उद्बोधयति च
अथवा स्वात्मानमनुसंदधदेव विषयं गृह्णाति अपि च प्रमातृ
वर्तमानमेव प्रमाणं प्रमेयं पश्यतीति।
इत्थं योगी शब्दस्पर्शरूपरसगन्धादिविषयैः स्वात्मानमेव स्वदते
स्वात्मानमेव साक्षात्कुरुते परन्तु भावको योऽयं विषयेषु विशेषेण स्पर्शनिर्मा
ग्रहणतत्परः परमो योगी भवति तत्स्पर्शनिर्मालग्रहणे सर्वः समर्थो भवा
योऽयं विषयस्पर्शसुखः प्राकृत तत्स्पर्शजनितं स्वात्मस्पर्शं योगी
भवति तस्य दर्शनादेव कल्याणमस्तीति भवति संसारिणोऽपि यथा
दर्शनात्स्पर्शनाच्चापि

37A एवमस्मिन् योगी स्वात्मानमेवानन्दसन्दोहमवाप्नोति तथाहि

तत्वतः तो प्रतिभा ही दुःख सुख का कारण है
प्रतिभा होती तो दुःख सुख दोनों रहते हैं।
मैं आपके इस वाक्य से सहमत नहीं हूं कि
"अच्छा होता यदि यह सद्गुरु अपनी
आत्मा को सर्वव्यापक में ही लगा देते"
इसका कारण सम्भवतः यह है कि मुझे सर्वात्मा
आत्मा की कल्पना नहीं है।

शृण्वन्त्वज्ञास्तत्त्वं ते जानन् कस्माच्छृणोम्यहम्।
मन्यन्तां संशयापन्ना न मन्येऽहमसंशयः।

वे लोग सुनें जिन्हें तत्त्व का ज्ञान नहीं है। मैं तो तत्त्व को जान रहा हूं फिर क्यों सुनूं वे लोग मनन करें जिन्हें संशय है मुझको तो संशय ही नहीं है कि मैं मनन करता हूं।

मेरे विचार से तो यह विश्व परस्पराश्रित है एक दूसरे और एक दूसरे सम्बन्ध द्वारा से ही दीखता है चाहे माता पुत्र भाई बहन गुरु शिष्य आदि और कुछ भी क्यों न हो।

प्रभुजी! आपको यह तो ज्ञात ही है कि मैं किसी पर भी क्रोध नहीं करता हूं और कि मुझे सबमें अपने ही दोष दिखते हैं। आपके उपदेश

[illegible] था। [illegible] की ओर [illegible] मेरा जन्म ही दूसरों की सेवा के लिए है वह तो मरने पर भी नहीं छूटेगा।

यह सत्य है कि मैं सबको कल्याणकारी बनते देखना चाहता हूं मेरे हृदय को अपने ठीक पता है मेरे हृदय को एक ठेस सी लगी है उसको मिटाने का और है यह मुझको पता नहीं है और न अब मैं उसके कारण या निराकरण के उपाय को ढूंढने का प्रयत्न ही करता हूं जिस प्रकार लोहे का भार बेकार का दुःख भूलता को सुख बनाता रहता है उसी प्रकार यह मेरे हृदय की ठेस मुझे अनन्त विभूति प्रदान करती रहती है
जैसे आपने पूज्यदेव के अन्तर्मन की स्मृति कराकर अवसर और कालीन कर्तव्य को संरक्षण किया है वैसे ही यदि आप की प्रेरणा होगी तो मेरा हृदय कुछ पत्र पूज्यपाद जी के श्रीचरणों में समर्पण के लिये भेजेगा। आशा है कि नीति ठीक है।
श्री गुरुदेव के चरणों में मेरा प्रणाम निवेदन करेंगे तथा भाई मोहनलाल जी देवी समेत का और मेरा सादर नमस्कार कहेंगे। अन्त में यही निवेदन करूंगा कि —

राग द्वेष, सुख, सुखोदय, लयाऽहंकार, दैन्यादयो
ये भावाः प्रतिभान्ति विश्ववपुषो भिन्नत्वमाभान्ति ते।
व्याप्तौ पश्यति यः स्वयं स्वहृदये [illegible]
संविद्रूपमवेदयं किं न रमते तद्भावनानिर्भरः॥

आपका सदा आज्ञाकारी [illegible]

परमाराध्य प्रभो।

आपका कुशल पत्र कल्ह रात में मिला पढ़ा और
विदित ही वस्तु पुनः विदित हुआ और मुझे मालूम
हो गया था कि श्री १०८ गुरुदेव का दर्शन नहीं होगा
यह बात उसी दिन ज्ञात हो गया था जब आप को
पत्र मैंने भेजा था।
मुझे पहले पत्र से ज्ञात हुआ था कि प्रत्यक्ष ही
कर भगवान् वह मुझे आप दिखाना चाहते
थे परन्तु वह देखने को नहीं मिला।
आप के पत्र अक्षरशः सत्य हैं उसमें कु-
छ भी मिथ्या नहीं है। कि [illegible] मैं कुछ अप-
नी बात भी आप के सामने रखता हूँ
मेरी दृष्टि में आज से नहीं, प्रारम्भ से नहीं
परन्तु बहुत दिनों से दो प्रभु देखी हैं एक तो
आप, और दूसरी आप की और मेरे स्वयं
की प्रतिभा है। आप कोई पत्र लिखते समय
ध्यान ही ध्यान में सामने रहते हैं।
दुःख की बात कहते प्रायः जहाँ तक मुझे और
[illegible] उस पत्र में मैंने [illegible] में स्पष्ट कर
दिया था कि आप पत्रों में विलम्ब
करते हैं [illegible] मुझे दुःख होता है। और

857 ३६४

NO ENCLOSURES ALLOWED

भेजने वाले का नाम और पता :- Sender's name and address :-

पहला मोड़ First fold

INLAND LETTER

यहाँ काट कर खोलिये To open cut here →

NO ENCLOSURES ALLOWED

भेजने वाले का नाम और पता :- Sender's name and address :-

← दूसरा मोड़ Second fold →

पहला मोड़ First fold



अन्तर्देशीय पत्र INLAND LETTER

श्रीः

अयि! अखिलैश्वर्यभासनशीलप्रेमे! विजयतान्तराम्।

आपके पत्रोत्तर तो मैं पहले भेज चुका हूं आशा करता हूं मिल गया होगा।

यह पत्र मैं एक जिज्ञासा से लिख रहा हूं इसका उत्तर आप शीघ्र देंगे।

आजकल दिन क्रमानुसन्धान में ही बीतते रहते हैं एक-एक निबन्धों को मैं पूर्णरूप से आकलन करने में अनुवाद करने में और लिखने में लगा रहता हूं कुछ समय शैवशास्त्र स्वाध्याय में भी बीतता ही है।

जिज्ञासा यह है कि क्रमस्तोत्र में तेरह श्लोक हैं या बारह या चौदह! इसके निर्णय के लिये उस तेरहवें श्लोक को मैं चाहता हूं जिसे संपादक श्री आचार्य राजानक जयरथ ने चौथे आह्निक के १०१ पृष्ठ से लेकर १०२ में उद्धृत व्याख्यान किया है। यमकाली विषय के श्लोकद्वय को तो श्री जयरथ ने खण्डन नहीं ही किया है प्रत्युत उन श्लोकों को ... कालीविषय में भी प्रस्तुत कर तेरह काली होने का खण्डन कर दिया है।

अतः श्री यमकाली विषयक वह तेरहवें श्लोक कौन सा है यदि आप उसे लिख भेजें तो बड़ी ...

[illegible]

[illegible]

उस में पं० काशीनाथ भगवान् पढते
सब विषयों से मुझे कोई ... एवं १२- ... मैं के
वह उस श्लोक के भी चाहता हूं। मैं [illegible]
[illegible] अभिनव देवं गुरु के [illegible]
टीका लिखने की भी विचार [illegible] कर लिया है
और इसके लिये काफी अनुभूति भी [illegible] प्राप्त
कर लिये हैं अब ये सब बातें हमें एक [illegible] रहे
प्रतीत हो रही हैं क्योंकि इन विषयों को
मैं भी [illegible] करता हूं। विशेषतः आप
को अनुभव [illegible] हो रहा है कि
द्वारा ये सारे काम [illegible]
द्वारा हो रहे हैं।

आपका
रा० जी.

है एक बात और लिखना है कि श्री आचार्य अभिनवगुप्त ने [illegible] लिखे हैं जिसका कुछ अंश [illegible] प्रकाश [illegible] किया है [illegible] पुस्तकालयों से पृथक् [illegible] यह ग्रन्थ उपलब्ध है या नहीं [illegible] अथवा [illegible] पता है या नहीं

श्री शिवानन्द नाथ तथा श्री अवतारक नाथ
दोनों एक हो हैं या दो :
श्री क्रमस्तोत्र के रचयिता को श्री [illegible] नाथ हैं
जिनके विषय में अभिनवगुप्त जी ने लिखा है त० आ० [illegible] १९३
"तदेतत्तीर्थमपि [illegible] स्तोत्रे [illegible]
[illegible] "।
आपको ज्ञात है यहां हो एक कालिदास विरचित
"चिद्गगनचन्द्रिका" नाम का ग्रन्थ है उसमें ग्रन्थकार
लिखते हैं — "सिद्धनाथकृते त्रिक्रमस्तुते:
कालिदासरचितं च पञ्चिकाम्
यावदेव [illegible] च ते स्तवे
[illegible] जगत् ॥३०५
इस से तो यह भी प्रतीत होता है कि "सिद्धनाथ" [illegible]
~~तथा श्री अवतारक नाथ [illegible]~~
[illegible] यह सिद्धनाथ कोई भिन्न है या एक नाथ
है। उसी ग्रन्थ में "यः शिवानन्द प्रभृति सोम [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] ॥३००
(इसमें ३०६ श्लोक [illegible] हैं [illegible] और [illegible]
यहां "सोमपादैः" और सोमराज [illegible] (या [illegible])
१९६५ [illegible]
१९९६ [illegible]
[illegible] यहां सिद्धपाद [illegible] अवतारक नाथ [illegible]
है [illegible]

श्रीगुरुचरणाभ्यां नमः

शक्तिर्यस्य परैः प्रकृत्यनुगतैः प्रोक्ता प्रकृत्यारव्यया
बोधाद्धीतिमुपागतैरिति पुनर्ध्यानैरविद्यारव्यया
स्पन्दात्मा जगदम्बिका शिवमयी सूक्ता बुधैर्देशिकैः
सोऽयं मे गुरुदेवलक्ष्मणशिवः पायाच्च शिष्यान्सदा ॥
(१)

स्मृतोऽपि मनसा मनाक् करुणया जनानुद्धरन्
ददच्च शिवतापदं सहजमोक्षसम्पद्युतम् ।
जनेभ्य इह सर्वदो निखिलदुःखदोषापहो
मदीय हृदि सर्वदा वसतु शङ्करो लक्ष्मणः ॥
(२)

श्रीमद्गुरोर्विजयते करुणामयी दृक्
निःशेषभूतिजननिका जगतीश्वरस्य ।
लब्ध्वा तनोति सततं सकलां विभूतिं
या दुर्लभास्ति भुवने खलु दुर्भगानाम् ॥
(३)

मनुष्यता वा बहुविज्ञता वा
यशस्विता वा विफलत्वमेति ।
यया विना तां लभतेऽतिभाग्याद्-
गुरोः सपर्यां भवभीतिहन्त्रीम् ॥
(४)

श्रीमद्गुरोर्निखिलदैन्यविनाशकं तत्-
पादाम्बुजं विमलबोधमयं नमामि ।
यद्दर्शनप्रभृतिविच्युतविकल्पजालः
स्वस्थो वसामि शिवभावमुपागतोऽहम् ॥
(५)

देवो महेश्वर इह प्रकटोऽस्ति यो सौ
श्रीलक्ष्मणार्यो भवभीतिहन्ता ।
मोहापहन्त्रे विभुताप्रदात्रे
मम प्रभवे नमो नमोऽस्तु तस्मै ॥

भवेऽत्र भवतापहा सकलभोगदानेन यो-
जने पशुपतित्वकृद् भवति बोधदानेन यः ।
तमेककरुणाकरं सकलसिद्धिसम्पादकम्-
भजामि गुरुलक्ष्मणं भुवनभाननिर्वापकम् ॥
(६)

यत्पादाब्जनखज्योतिर्हन्ति मोहमयं जगत् ।
नमस्तस्मै महेशाय गुरवे ज्ञानभास्वते ॥
यत्पादस्मरणादन्यत्किञ्चिदस्य न विद्यते ।
नमस्तस्मै च तस्मै च गुरवे भक्तिशालिने ॥
(८)

(मुण्डकाली)

तादृश्यं ते तिमिरनिजविभवविस्फारणवशात्
अपारो यः बद्धचक्रक्रमस्फुरितपदं शास्त्रयः मृत्युः
क्रमप्रकृतिमेवेन प्रविदधाति नेत्रां भुवि दृश्या रुद्रकाली
मिमार्गोदेवीमयः प्रवण हृदयः स्योर गतमदः ॥
(२१)

(त्यजन्ति) केवलं (रुद्रकाली)
इमां सन्ध्ये भूमिमवभयामेदान्तिक कालीम (अनुकाली)
(विफलता) इमां बोधैकान्ततत्त्वरतमयीं चरापि विदधे
(संरोधे) नादेयं (सम्बोध्य) प्रतिमथ विलुप्यरशमती (विलोप्य)
यैथेदं चरचरं भजातृतातत्तत्तर मम हृदे ॥
(२२)

(मार्तण्डकाली) (प्रकाशं)
क्रमपरकृत्ये स्वार्थः पातिमित पद मरनं पदवी
(वृत्त) मर्वप्रतस्य स्फारं निजनिजरुचौर संहरति यर
इयं मार्तण्डस्य स्योतिपदप्रजः सन्मा विलं
इन्द्रादावर्जनी त्वनु मम भेदं भवभयात ॥
(२३) (परमार्ककाली)

(विनाशं कुर्वन्तो) समग्रां भक्षाली क्रमविरहितामग्रसीने भुङ्
निर्वेश्वरानन्तानन्त वहलितमहाराशिं निवहा (प्रसरेत)
(परांदेवपरनन्दे) कलापितमहारादरवती
प्रसन्ना मे भूयाद्हृदयप्रदवीं भूजयतु च
(आदित्यानन्दे) (२४)

वाह्यवृत्तिं हातुं चोतिभिर्व महारं निवासितम
यदा भवाभेदं प्रथयति विनेत्रोमि चपलः (त्वं)
स्थितेनीरशदेवी कलयति तदासातनविमोः
स्थितेः सर्वसार्वभौमः कलयतु विनाशि भ्रमतदा
(१७)

(संयमकाली) (यमकाली)
अगोसंहारेण प्रशमयितकोमः स्वेमनरत (वैभव)
(भय) स्वशङ्कातङ्कालं विधिमथ निबैध्य प्रथयति
यमं संरुद्धेत्थं त्वं जनयति च शङ्कां विदलयन
महादेवी सेयं मम भवमयं संदलयताम ॥
(१८)

विलोक्य शंकौघे सपादपाटे पूर्णे च विभव (संहारकाली)
गतेलोकाचारे गलितविभवे शान्तोनियमे
अनन्ते मोघयैवं ग्रसितुमामितो लम्पटरसां
विमोर संतोरात्मौर मम हृदे मिदाशं प्रहरतु ॥
(१९)

(हृदे) तदित्थं देवीं मे सपादे दलिते मेदाविभव (मृत्युकाली)
विकल्प प्राणसौ प्रवेलसाति मत्तृस्थिति रतम
अतः संसाराँश्च निजहृदे विमृश्य स्थिति सभी
प्रसन्ना स्यान्मृत्युप्रलय कालीमे भगवती ॥
(२०)

इतीदृक्षौ रूपै वरद विविधौ ते किल वपु-
र्विभाति स्वांशेऽस्मिन् जगति गतभेदं भगवतः
तदेवैतत्तौ तु हृदयमधगीर्वाणकरुणं
प्रपन्नानां श्रेयस्यमे सततमपरित्यक्तमनसः ॥
(९)

तवैवैकस्यान्तः स्फुरितमहसो बोधजलधे-
र्विचित्रोर्मिश्रेणीप्रसरणरसो यः स्वरसतः
स एवायं सर्गस्थितिलयमयस्फारितरुचां
शशाङ्कार्काग्नीनां प्रकटपदपातो विभवः ॥
(१०)

अतश्चैवाचिन्त्ये क्रममहितशादोऽस्थितियुपो
विमर्शः शक्तेः शश्वद्दृशजाति न विभेदं कथमपि
तदेतस्यां भूमावकुलमिति ते यत्किल पदं
तदेकाग्रीभूयान्मम हृदयभूर्भैरव विभो ॥
(११)

अमुष्मात्ते पूर्णाद्भुतरसमहोल्लासे सहजोन्-
मिषच्छक्ते भेदंगमयसि किलैच्छा प्रसृततेः
अतश्चैवं स्वातन्त्र्यं तव तदिदमत्यद्भुतमयीं
भवच्छक्तिं स्फुरन्ती गलितभयोऽहं शिवमयः ।
(१२)

इदं तावद्रूपं तव भगवतः शक्तिसरसं
क्रमाभावादेव प्रसभविगलत्कालकलनम्
मनःशक्त्यो नोचारपथकरणचक्रैर्बहिरयो
धरादौ सद्रूपं प्रकटयदपि क्षेयमनिशम् ॥
(१३)

क्रमोल्लासं तस्याः भुवि विरचयन्भेदकलनां
स्वशक्त्यैनां देव प्रथयसि सदा स्वात्मनि ततः
क्रियाज्ञानेच्छाख्यां स्थितिलयमहासृष्टिविभवां
त्रिरूपां भूयस्त्वं समधिशयितुं व्यग्रहृदयः ॥
(१४)

पुरस्तात्सैवोल्लीना इति वद्मयी या त्वयि विलसते — (शिवे)
परोल्लासोन्मुख्यं व्रजति शनकैः स्पर्शसुभगा
इतश्शक्तिः स्फारीभवति विभवस्या भैरव विभो
शिवेयं स्वस्थान्तर्मम भवति नित्यं विलसता
(१५)

विसृष्टे भावांशे बहिरतिशयात्स्वादुविरसे (रहिते)
यदा तत्रैव त्वं भजसि रमसाद्रसिकमयतां
तदा स्फारीदेवी तव सकलमावेशनमम
क्रियाधिकारावनक्रमघटितं गोष्ठीगतवृजिनम् ॥
(१६)

विद्युन्यातो यन्त्रनाम भते भव भगवान्स्त्वामनुमतौ

रसीकृत्य प्रीत्या स्तुतिकृति वद क्षोभितमिदम्
विचित्रं चित्स्फारस्फुरितमिह मे रम्यभवति
चिरं न भवति त्वद् वरद भवतो यन्मे स्तुतिकृतः ॥

(५)

भवप्राप्यैः स्वैर्यैः प्रथितबहुशक्तेर्भगवतो
विचित्रैश्चारित्रैर्हृदयमधिशेते यदि ततः
कथं स्तोत्रे कुर्यादयमपि कृतिं तेन स हि तैः
शिवैकात्म्यप्रौढे शिवनतिरसपेशलः प्रथमकः ॥ कृपालम्

(६)

ज्वलद्रूपं भास्वद्वचनमथ यदाह प्रकटनं
किमु स्वात्मद्रष्टृ किमपि घटते नैव हि वपुः
स्तुवे संविद्रश्मीन् यदि निजनिजैः स्तेन स तु तैः
भवन्नामानः ~~[illegible]~~ काश्चिद्भवति परमेशस्य विभवः ॥

(७)

विचित्रैश्चारित्रैर्गलितनियमे यः किल रसः
परिच्छेदाभावात्परमपरिपूर्णत्वमसमम्
स्वयं भावैर्योगाः सकलभवभावैकमयतो
विहृत्य स्वैर्मोघैः परिचितिरतैर्वो चितिगुणा ॥

(८)

अयं दुःखव्रातव्रतपरिगमे पारणविधि-
र्महासौख्यासारप्रसरणरसे दुर्दिनमिदम्
यदन्यन्यक्कृत्य त्रिजगति विशेषप्रोषण-
ज्वरे विमर्शः स्वात्मे शक्त प्रति फलति चैतन्यमयम्

(१)

विमृश्य स्वात्मानं विमृशति पुनः स्तुत्यचरितं
तथा स्तोतः स्तोत्रं प्रकटयति भेदैकविषयम्
विमृष्टश्च स्वात्मा निखिलविषयज्ञानसमये
तदेवं स्तोत्रस्तेऽद्वयमिह सतां यत्नरहितम् ॥

(२)

अनामृष्टः स्वात्मा न हि भवति भेदप्रमितिभाक्
अनामृष्टः स्वात्मेत्यपि हि ननु विमर्शः निविडः
शिवश्चासौ स्वात्मा स्फुरदखिलभावैकरसिता
स्तवादौ ते तत्ते प्रवणहृदयोऽनित्यस्तुवितः

(३)

विचित्रैर्जल्पाद्यैर्भ्रमजपरिपाटीपरिकरैः
स्वरूपं सार्वज्ञं हृदय यदयत्नेन भवतः
तदन्तःसंविद्वीर्यप्रसरसरणीभूतमहिमा
स्फुटं वाचि प्राप्य प्रकटय विभो स्तोत्रमधुना

(४)

तात्पर्यं ते तिरस्तीर्णमिथ्यामवाविरफ़ाळजनशाद्

स्वपर्ययर: जद् च मे श्रमी, तत्पदं शमेय, मेर,

कमर मेवळ प्रविद्याा मनेर मार्व दश्या

मेतामयादेवाम्य: प्रवळ पुर्ण स्पर गतमय:॥

(२१)

इमा सन्ध्ये मुमिम्नव मयाव्रत्निकळ गामि

रतिसरचीकरनते ग्रोत्रत मयात्न्यराय मिदधे

तादे धं ते मवर्च्य श्रातमयाविजुप्यरशुभवती

यैथेवं चरचर(भजाभुलतानरन्हरममहादे ॥

(२२)

क्षेमयम् ज्ञेस्यादे: यामि मेय पद: मयतं पदवा

मयर्षस्य स्फारं नियोनेजस्यचर संहितो यर

इयं मार्ग स्यास्यो ते पदयुज: गत्मा विल्ल-

इश्वरधावाविणी ज्ञवतु ममयेप मवमयरत ॥

(२३)

तेन्नाग्रमवरत्नां कमयेरन्द्रेमयमीने मुद

त्विचिरेणातनतेनते पहलाते मे हारा रश्मेनियहा

जरारेज्यरमत्व कमल मिताराद्वतन्नग

इतिनता मे स्वार्हदयनिमां मुवयाद्व

हे विशुद्ध चैतन्य आनन्द को प्रकाश करने वाले प्रभो जो

हे विद्य आपको सदर जय हो।

क्या कहूं, मेरा बालक हो नहीं, निकलता है।

जैसे आपका पत्र भी आम जैसे आम का [illegible] करता हूं और

इहां के सहृदय लोगों को यद्यपि आपके दर्शन से उत्पन्न होने

वाले अनिर्वचनीय आनन्द के अनुभव के भाग्य से वञ्चित

रहे, या रहते हैं, (फिर भी उनको) सम्पूर्ण वेद्य विषय से रहित कर रहा है।

(परमानन्द पद में स्थिर कर रहा है)

(उस आपके अपने इस जन की क्या अवस्था दशा है, इसको इस समय लेखन

में सर्वथा असमर्थ हूं क्योंकि यह अपना अपना —)

आपके परम कृपा से लिखित पत्र को सम्भवतः [illegible] विशेष

प्रणाम से प्राप्त हो गया है। विशुद्ध विद्या स्वरूप आपके स्वात

न्त्र्य को वह ही तथा (अपने) आपसे अभिन्न हो गया है

से जैसे परम भाग्यवान हैं, फिर भी निपात रहने से निष्फल हैं।

विशेष [illegible] नहीं पत्र तो उनको प्राप्त है, लोक और परमार्थ

[illegible] प्राप्त किया [illegible] शिव है जीता है अपने अभिन्न

अपने मित्र के आग्रह को तरह और इसका अपना है उसको

परिवेद पत्र रहता है। उत्तर क्या दशा (है) पत्र ग्रहण, पत्र

दर्शन, पत्रमनन द्वारा क्रमिक अपना और परमार्थ लक्ष्यार्थ

अनुसार के [illegible] से मत हो गया है (उस) इस जन की

अवस्था दशा को इस समय कौन जान सकता है

प्रमाणे संलीने शिवपदलसद्वैभववशा
त्स्वशरीरं प्राणादिमितकृतकमातृस्थितिमयः ॥
यदा ध्वस्तो याति: प्रलयपदमासादयति ते
तदा देवी यस्तां लसति मम सा खेचरमयी ॥

(२५) (महाकालकाली)

प्रकाशाख्या संवित्क्रमविरहिता शून्यपदतो
बहिर्निर्यान्ती प्रथमति समास्वादकतया
ततोऽप्यन्तःसारं गलितमलनिर्दक्रमतया
महाकालो सेयं मम कलयतां कालमखिलम् ॥

(२६) (नाशकाली)

ततो देव्यां यस्यां परमपरिपूर्णस्थितिजुषि
क्रमं विच्छेद्योच्चैः स्थितिमतिरसात् संविदधते
प्रमाणं मातारं मितिमथ समग्रं जगदिदं
स्थितं क्रोडीकृत्य श्रयति मम चित्तं चितिमिमाम् ॥

(२७)

अनर्गलस्वात्ममये महेशे तिष्ठन्ति यस्मिन् विमृशकयस्तेः
तं शक्तिमन्तं प्रणमामि देवं मन्थानभैरवं जगदेकसारम् ॥

२८

इत्थं स्वशक्तिकिरणौघनुतिप्रबन्धान्
आवर्त्य देव यदिमे प्रणुतिप्रसरदर्थं
तेनाशु सर्वजनता निजशासनार्थं
संशान्तिमाखिलतमःपटला विधेयाः ॥

२९

षट्षष्टिनामके वर्षे नवम्यामसितेऽहनि
मयाभिनवगुप्तेन ...

...बिन्दु ...नादो
...स्पन्द ...लम् |

प्रवर्तन्तेऽचिरेणैव
क्षोभकत्वेन देहिनः ॥ स्पन्दकारिका
६
इत्युक्तः क्षोभकत्वेन
'स्पन्द' बिन्द्वादयो यथा |
न तथा प्रातिबेद्योऽपि
स्पर्शः प्रत्युत स्वीकृतः ॥
७ किन्तु समाहितः
स्पर्शः कोऽपि सदा यस्मै
योगिनः स्पृहयालवः । उ. श्लोक
इत्येकादशे प्रोक्तं
तन्त्रालोके महात्मना ॥
८
शाक्तं भित्वा ततो देवि!
चक्रं शैवं व्यापिनी भवेत्
भवेदनुभवस्ते मे
स्पर्शो यद्‌व्यापिपालिका ॥
९
इति स्वच्छन्दतन्त्रेऽपि
व्यापिन्यां स्पर्श ईरितः
अतस्त्वं व्यापिकारूपा
पश्य मातस्त्वं चञ्चला | मातर्मायायामे ...
१०
यावन्न ते कृपादृष्टि-
र्मयि दीने निपात्यते ॥
तावत्सुखं कुतः शान्तिः
पूर्णता वापि जायते ।
११

अहो देवि! विचित्रेयं
काया ते स्वतन्त्रियम् |
भुज्यते या सदा सर्वै-
रस्पृष्टैवाति भाति ॥
१२
कुमारी शिवसूत्रेषु
प्रोक्ता तेन शिवेन हि |
इच्छायाः त्वयि मे देवि!
शिष्टं स्याद्वरन्तु किम् ॥
१३
व्यापिनीश्वरूपा यस्य
व्यापिनी त्वं भवाम्बुजा |
योगिनां प्रार्थितासि त्वं
सामरस्यमभीप्सुना ॥
१४
दिव्यासि दिव्यरूपासि
स्पृहयाम्यहमेकलः
त्वां, तथापि स्पृहयन्ति ते
लोकाः सन्त्येव सन्तु ते ॥
१५
कथं त्वां समुपासेऽहं
प्रार्थनापि कीदृशी |
स्वच्छन्दासि कथं मह्यं
न स्वाच्छन्द्यं ते यच्छसि ॥
१६
~~यदीयं (पाशवी) यावन्न तुष्टं~~

पा. सू. अ.
"स्पृहेरीप्सितः"
पुष्पेभ्यः स्पृहति
प्रकर्षविवक्षायाम्
पुष्पाणि स्पृहयतीति।

हे प्रभो विजयं नित्यं
काङ्क्षते यो जनस्तव ।
त्वज्जयो विजयस्तस्य
न स्तः क्षय जयाजयौ ॥ १

देवि! त्वां मातरं नौमि
स्वात्मवैभवदायिनीम् ।
पूर्णसंवित्स्वरूपालि
पूर्णवैभवदायिनी ॥ २

अन्तरे देवि! ते रूपम्
पश्यतश्चापि चक्षुषा ।
शृण्वतो कर्णयोश्चापि
पूर्तिः किं नहि जायते ॥ ३

X स्वात्मसात्कर्तुमिच्छामि
व्याप्तिस्पर्शेन्द्रियैरपि ।
त्वां विना नहि पश्यामि
शान्तिं तां परमाद्भुताम् ॥ ४

स्पर्शात्मकं तु ते रूपं
निर्विकल्पं गुरूक्तं नहि
स्वपरातीतम् पूर्णत्वात्
प्रतिबिम्बो यथाकृतः ॥ ५

... दासता याचनां देवि

मम तुभ्यं न रोचते ।

नूनं स्याद्द्वितर सारवे

त्वमेवासि न ! किं वद ! ॥

१७

विमर्शरूपां त्वां देवि ।

प्रोवाच प्रातिभात्मिकाम् ।

स्मर त्वं तमभिनवं

तन्त्रालोकविमर्शिनम् ॥

१८

अनन्यापेक्षिता यस्य

विश्वात्मत्वं प्रति प्रभोः ।

तां परां प्रतिभां देवीं

संगिरन्ते ह्यनुत्तराम् ॥

१९

प्रतिभाप्रभवोर्नास्ति

भेदः कश्चन वस्तुतः

एकैव सा द्विधा भूता

प्रभा सार्कयोरिव ॥

२०

आत्मिकांश्च नैकट्यं

चिद्व्योम्नि मज्जनं हि तत्

बाह्यत्वमपि दूरत्वं

याचे द्वैत निमज्जनम् ॥

२१

~~बोधलब्धि~~ देहे देवे

दोलं

(3)

यथा यस्यास्ति दूरत्वं
तथा तस्यास्ति वेदने ।
प्रयतस्तात् त्वयैव
कोऽयतः सुख जायते ॥
२२
आतंकं शिव त्वं नु
सर्वस्माद् तव हि
भावत कलादीनां
यत्नात् न शिवेऽस्ति ता
२३
किं माध्यं कं महं देवि !
वच्मि विदग्धे ! प्रमे ! ये !
दासोऽस्मि सुसन्तुष्टं
सेवे त्वां तु कथं वद ॥
२४
भक्त्या सा सात्विका देवी
सदाश्लिष्टा महेश्वरे ।
क्षणं सम्प्राप्य मद्वाचा
प्रार्थनीया दयात्मिका ॥
२५
इयं मे प्रार्थना तस्यै
कृपामूर्त्यै पुनः पुनः
दाक्षिः सा मायि संरक्षा
यया मां त्वा मदर्शयत ॥
२६

Lm
२४८

283
246

किं च को ऽसि न सि वा चेव
को ऽसि मञ्जर्या: कथं च को
शङ्कर निरञ्जनाचार्य तु –
(उ) अयं मत्स्येव तिष्ठति ॥
36

क्षमस्व त्वं क्षमाशीले
दोषदायं परित्यज
न स्वामिन्नि परामिन्वर
पाप: कुमारापि वर्तते ॥
3८

य: प्रभु भाति ते नित्यं
यत्र कुत्रापि हे प्रभो
तस्मै स्वात्मस्वरूपाय
तुभ्यं मह्यं नमो नम: ॥
3९

त्वां समाश्रित्य ये गी:
प्रसृता: बहुरूपिणा:
सा विशुद्ध चिन्मरीचिमा
त्वं यस्यां भाति स्फुरन् ॥
४०

अस्मिन् जन्मनि देहेऽस्मिन्-
नापि जन्मान्तरेऽपि वा
स्वप्रभो त्वां परित्यज्य
क: स्यातुं प्रभवेत् प्रभो ॥
४१

+++
न सतृष्णो वितृष्णोऽस्मि
नाशो नैवास्मि पाण्डव ।
यथेच्छासि तथैवास्मि
यथाहं, वं तथा न किमपि ॥
४३
पूर्णोऽसि पूर्णरूपोऽसि
त्वं प्रमोदकरं शिवं
कुरुत्वं ... ...
... ... ति ॥

न सतृष्णो वितृष्णो वा
नाशो नैवास्मि पाण्डव:
यथेच्छासि यथैवास्मि
(नि:शङ्कं त्वं प्रवर्तस्व समाश्रय)।
प्रवर्तस्व यथेच्छया ॥ +++

किं त्वास्मि न हे देवि ... ...
...ति ... ... न ... पुन:

28A
LU6

आध्यायिकासि कामिष-
मलस्य पारतंत्मनः
धर्माधर्मै स्वरूपस्य
या सृष्टिः प्रत्ययात्मका
सा जायेकर स्वसृष्टैव
तां त्यजन्नेति मुक्तताम् ॥

त्यजन्+इति
त्यजन्नेति
एति=प्राप्नोति

स्वविश्रान्ति महानन्द-
घनतात्मैव योगतैः
परमैतरती: सेरी-
र्वपर्यात्यनेयर स्फुटम् ॥

अस्याः गुरुवं संस्यार-
पायो नरन्यति कश्चन
अस्वातन्त्र्यं तत्र्याय
पैत्र्यत्वात्म विन्दति ॥ पुद्गलः

कञ्चुक एको चितानुचितचितेन
कर्तव्याकर्तव्यसंजादि-
प्रत्ययसृष्टेः
अवर्णात्मक वर्णविशेष
मवर्णवाच्याः मात्रिक-
शब्दात्मिकाया:

कियत्त्वां याचे हृदयं
कृपामात्रैककाङ्क्षिणी मे
अहं याचे कृपामेव
काङ्क्षेऽन्यन्नहि किञ्चन ॥

विदितं पूर्वतश्चास्ति
" नाकाङ्क्षा तेऽस्ति काचन ,, ।
कल्पवृक्षतलो तिष्ठन्
(याचकर्याचिने याचकः) ॥

अथवा
मे

प्रसन्नोऽपि गम्भीरो

मोहनो मादृशामपि ।

बन्धको या भवदिच्छा

माद्विमर्शिनि नस्तव ॥

26

मन्येऽहं न तवैवेच्छा

मदागमनमीप्सति

(यदि भवेत्तदा तस्याः) स्वतन्त्रायास्तवेच्छायाः

रोधकः कः परो जनः ॥

27

अहन्तु परवानस्मि

वाञ्छेद्यो मां यदा यथा

तथैव विनियुक्तः सन्

तमेवानुसराम्यहम् ॥

29

ईश संविन्न बन्धस्य-

हेतुः क्वापि न पार्शवी । सा / न

तत्पद भाविनी, के भेदो-

दयमात्र संतत्यिका ॥

यो मायीयजव मल- 30

मानेऽहारकानिकों मतौ ॥

=

किन्त्वीशस्य शब्दादि-

विषयपूर्वभाविनी ।

31

273
245

273
65

यत्र मोहोऽपि मे भाति
प्रमेयं मे महेश्वरि ।
सर्वसम्पत्प्रहेतुर्मोऽयं
मोहो मा मां व्यपैतु मे ॥

मोहोऽयं मे प्रियः कीदृक्
यादृशी त्वं प्रिया ~~प्रेमा~~ मम
कीदृशी त्वं प्रिया मेऽपि
यादृशी मे प्रिया प्रभा ॥

ऊर्जा सा मोक्षदा याऽसि
बुभुक्षोर्यापि भोगदा ।
सा शिवस्य प्रभैवासि
सर्वदा सर्वदायी मे ॥

सर्वं ददाति या- सा सर्वदा

किं किं वाञ्छे कियद्वाञ्छे
वाञ्छेऽहं केवलं परम ।
त्वमेव मे सदा चिन्त्यः
वाञ्छनं नान्यदिह किञ्चन ॥

योऽहमस्मि परं तत्त्वं
निराशंसः परः शिवः
तत्र किं भाव्यं मम त्वं
नासि सर्वेश्वरी प्रभा ॥

चिदानन्दमकारोऽस्मि
प्रकाशो निर्विमर्शकः ।
हाकारात्मा परा त्वं वै
स्वानन्दैकरसा प्रभा मम ॥

हकारः ~~शक्तिः~~ एव
अकारः शिवः
आकारः यस्याः ।

तत्र सर्वं स्वरूपाऽसि
केवला परमाद्भुता ।
जगद्वैचित्र्यरूपापि
मधुराणु रसोऽपि मे ॥

संकोचश्च विकासश्च
भवत्येव प्रतिक्षणम् ।
किन्तु यावन्न सम्यक्ते
तावन्न स धातिमान् प्रभुः ॥

देशकालादि देहादि-
वस्था भेदानुवर्तनैः
बुद्धे भेदोऽज्ञानभेदाद्
विकाशो बहुरूपधृक् ॥

योगिनोऽपि यतचित्तस्य
पूर्णता गगनस्य तु
निष्पन्दोऽस्ति पूर्णता-
स्वच्छन्दे सर्वदा ।

2

अयि सर्वमङ्गलजननि जगत्प्राणभूते ।
नित्यस्नेहास्पदे प्रभे । विजयतां
ते प्रभा ।

तत्कृपयात्रत्यकुशलशाली भवदीयो यं जनः प्रत्यहं मधु मञ्जरन् प्रातः प्रथमं विश्वेश्वरस्य पादध्यानः व्यालोलितकालीस्तुतिं कुर्वाणः संविच्चक्रोदयानुभूतौ तत्परतिमग्नोऽभवत् येन विश्वविद्यालयीयकृत्यान्तिवाहितमेव पत्रं दरस्यरमीति मनाक् स्थापयन्तन्ददद्ये वर्षयन्ती पत्रम ।
तत् क्षमापयामि स्वीयानवधानताम् ।
श्रीमद्भः पूज्यपादेभ्यः स्वामिजीभ्यो
मे प्रणामाः श्रद्धाभावभाविताः ।
श्रीदेवी शारिकाभगवत्यै सादरमेव नमस्कारोऽर्पणीयः ।

अद्यापि विश्वविद्यालयीयकार्यं अद्यप्रातः कर्तव्यमस्तीति पत्रलिखनं क्रमेण समाप्तम् । [illegible]

विजयतेऽति ।

कुशलेतर समय भवतां पत्रमप्राप्य मूर्तिमैकं शीघ्रमेव प्रेषयेति किन्तु न जाने तत्पत्रं भवतामाऽऽसादितं मापि न वा । अथवा तन्मूर्तिदिव्यनामाङ्कं भवती प्रतीक्षते अत न्यस्तमेतत् इत्यादि विकल्पाक्रान्तोऽयं जनः पत्रप्रेषणे उत्सुकः ।

अवाप्य पत्रं तत्रत्यं
समवीक्ष्याथि कौशलम् ।
प्रमोदते मनो भूयो
भूयः पिपठिषत्यपि ॥

पठितुम् इच्छति । पिपठिषति

वैराग्यं सेवते कोऽपि
कोऽपि रागमुपासते ।
तद्द्वयं समुपास्ते ऽहं
त्वय्येकस्मिन् सर्वदा ॥
विराग्य सर्वतः पूर्णं
त्वयि रागो भवत्ययम्
शुद्धध्वनिपतां गच्छन्
नैव स्पन्दत्वमृच्छति ॥

के
[illegible] गतौ

पहला मोड़ First fold

यहाँ काट कर खोलिये To open cut here

INLAND LETTER
अन्तर्देशीय पत्र

आदरणीय प्रभो! सन्त श्री स्वामी रामतीर्थ

यह पत्र मैं आपको अत्यन्त खेद से लिख रहा हूं। अब तक मैं प्रकृति साहब की ... को उन्नत शुद्ध करने के लिये ... और आपके ऊपर अत्यन्त दुःख होने लगा जाता है और ... मन में उबलने लगी है ... लिख रहा हूं ... उचित और ... अपने ... को समझ कर आपके समक्ष उपस्थित रहा हूं।

प्रकृति साहब की श्लोक रचना और ... अत्यन्त ... पूर्ण ... है प्रायः एक श्लोक भी मेरी दृष्टि में आनन्द दायक या सन्तोषजनक नहीं है (इसमें अपवाद भी हैं) ... एक पद में ...

शैवी

निहता: सर्व ध्वान्त ये वारेन प्रतिबन्धकाः
उदिते तिग्मरश्मौ तु के आज क्रीतमः पुनः ॥

आङ्गले तु चीलि ब्यामि
नये रद्य रातियौ [illegible] उधे
पञ्चदश्यां तिथौ सायं
पाद्यामि श्रीनगरं (आमौ ॥ शुक्रे

ता: १३ में [illegible] वार (तार के चलकर (शुक्र वार (
को आबू पहुंचूंगा और उसी दिन शाम
जितने वजे चल के पहुंच श्रीनगर (आउंगा।

आपका
शिष्य
(राम चन्द्र)

नमः श्रीगुरवे ।

सश्रद्धया यस्य गृहीतपादा
दैत्यादिमुक्ता भुवनाधिपत्यम् ।
प्रपेदिरे मादृशदेहभाजो-
ऽनेके तमेकं प्रभुमाश्रयेऽहम् ॥
(१)

यद्दर्शनादेव भवन्ति सद्यो-
जीवा अपीशाः पशुभावमुक्ताः ।
तं देवदेवं नरविग्रहस्थं
सेवे गुरुं लक्ष्मणनामधेयम् ॥
(२)

आज्ञामेयं भवत्तत्रं
प्राप्यैव हृदयं मम ।
हरत्युल्लासितं, तूर्णं
बाधकोऽभूत्सहायकः ॥

धाम्नि पत्रे विलम्बाच्चाद-
विलम्बः सह्यते मयो
परहस्तगते कार्ये
किं कुर्यां कोऽपि सत्वरः ॥
(३)

अथ च यदैवाहमागतवानस्मि तदैव [illegible]
यत् [illegible] भावेन [illegible]
[illegible] सम्पादितं [illegible], [illegible]
[illegible] गतोऽसि ।

भवतोः [illegible] यथा [illegible]
लेखितम् [illegible] विश्वविद्यालय [illegible]
मया ।

[illegible] [illegible]
[illegible] [illegible]
कथनीयः ।

साम्प्रतम् [illegible] सन्ति [illegible] पदं
पत्रम् । लिखितम् । तथापि —

स्पन्दानुवृत्तिरहितो नित्यस्पन्दसमन्वितः
तनुपेक्षितं ते स्पन्दो निष्पन्दोऽसि त्वयाकृतः ॥
नित्यस्पन्दमयीं देवीं शक्तिं त्वां प्रतिमां वराम्
प्राप्य प्राप्यं भवेद्यस्मात्किं [illegible] तद्वद भवतो नहि ॥
अप्राप्यं कल्पं मेवास्ति प्राप्यं चापि न तस्य वै
[illegible] त्वमेवासि ते सर्वं तत्स्यात्त्वमेव हि ॥
कृपाहात् तदैतेषां [illegible] मयोपात्ति ।
[illegible] विजयी यस्याः प्रसादात्स्याच्च सर्वदा ॥
[illegible] एव [illegible]

[illegible]
आत्मप्रमाणयो
[illegible]
[illegible] ।

25A
442

... के चौथाई में आ रहे ... हैं। इन दोनों

और क्रम अक्षरों की संख्या ने ... रहे हैं। अत्युक्ति भी कल्पनातीत होने से सही हो गये हैं।

इन श्लोकों में मुझे ऐसी वाचकपना दिखता है जिससे मेरा हृदय गद्गद होकर दुखी हो जाता है। क्योंकि यह अकर्तव्य, कर्तव्य रूप से मेरे ऊपर आपकी प्रेरणा से हो आया है। ऐसा मुझे प्रतीत होने लगता है।

इन श्लोकों के विषय में स्वामीजी से मैंने बात की थी तो उन्होंने भी यही कहा कि ये सही हैं।

इन श्लोकों की शुद्धि करा ली मैंने ...

कि छन्द ठीक नहीं हो रहा था ... यद्यपि बहुत पहले ...

... मिलाये हैं और जिससे मिथ्यात्व है वह यह ...

[illegible]

-वश से नहीं ...

दुःखित मुझे और आपके ... होने लगा है क्योंकि मैं बलपूर्वक कहना चाहता हूं कि मैं ऐसे अपराध को सहन नहीं कर सकूंगा तो ... इन ... के जानने से अभागे नहीं हैं ... है और इसी के कारण अपराध प्रतीत होता है। आपको यह दुःखद स्पष्ट, मेरे ऊपर नाराज होंगी ठीक था जबकि मैं मना करता रहा था। इन श्लोकों का यथावत छपवाना कहीं भी ठीक ... ठीक नहीं ... उचित तो यह होगा कि वे ... से इन श्लोकों को स्वयं ठीक से रचना करें। इन श्लोकों में "इन्द्रवज्रा, या (उपेन्द्रवज्रा) या उपजाति छन्द हैं उनके नियम ये हैं:

इन्द्रवज्रा — तीसरा, छठा, सातवां तथा नवमां ह्रस्व हो और बाकी गुरु, ११ सब अक्षर होना चाहिये।

उपेन्द्रवज्रा — यदि प्रथम अक्षर इसी इन्द्रवज्रा में ह्रस्व होता है और सब इन्द्रवज्रा के समान हों तो उपेन्द्रवज्रा कहलाता है।

उपजाति — इन दोनों छन्द के चारों चरणों में ... मिले जुले हों तो उपजाति। छन्दों के ... छन्द की रचना से ...

... जितना ...

... गुरु ...

6

आपकी शिष्या
ज्योति

24B
C40

परम विदुषे! परम ज्योतिर्मयि! निखिल
जन सम्बोधदायिनि! श्रीमति प्रभे।
आपका पत्र पा कर हृद
समुल्लसित हो जाता है। आज कल के
समय में मेरा स्वभाव ऐसा हो गया है
कि जगत् और शिव में कुछ अन्तर ही
नहीं दिखता है परन्तु स्वरूपोद्बोधक
आप के पत्रों की हृदय में लालसाएं
नित्य निरन्तर जागृत रहती हैं ऐसा
जो त्रिगुणात्मक है ही। जैसा स्तोत्रावलि
में प्रभु जगद्गुरु उत्पल ने कहा है
सर्वस्व भवल्लाभहेतु भक्तिमतां विभो।
संविन्मार्गोऽयं माहेश... [illegible]

24B
C39

मम स्मृतिपथे नित्यं विद्यते तद्वचः प्रभे।
सम्मुखाग्निः स्मृतौ यद्वि देव्यास्तव च सन्निधौ॥

प्रणम्या सहजानन्दा, देवी सा ब्रह्मवादिनी
यद्दया दृष्टिपूतोऽहं भ्राजे स्वानन्द निर्भरः॥

यादृशो मे त्वयि स्नेहो मयि वा तेऽस्ति यादृशः।
व्याहर्तुं तं न शक्नोमि वच्मि हे प्रभे! मम॥

हृदयं मे विजानाति नाहं वक्तुं प्रभे।
मन्ये ममैव ते चापि गतिरन्या न विद्यते॥

प्रभे त्वं सर्वदा स्वस्था भवितुं यत्नमाचर। सांप्रतं हि
स्वस्थस्य नास्ति संसारः ह्यस्वस्थो दुःखमश्नुते॥
स्वस्थस्य नहि संसारो भिन्नः कश्चन विद्यते
त्वाय: सर्वसंसारे दुःख [illegible] किं भवति॥
प्रभेऽहं त्वत्पुरो वच्मि [illegible] श्रुत्वैव न स्वयम्
अतः मैत्री च [illegible] च त्वमेकासि नचास्यहम्॥
सर्वदा हृदयस्थासि अमी जन्मान्तरात् प्रभे!।
तथापि भाति द्रष्टुं सदैवतो बुभुक्षिते॥ ३

निश्चला निर्मला नित्या
निरवद्या निराकुला
प्रभो ! ते परमाप्रीति-
र्जयतात्स्वयि महेश्वरे ॥

स्वभावविमले हृदये
प्रमदाच्चरिते प्रभो ।
अनानन्दप्रसरस्यापि
सम्भवो न कदाचन ॥

अहर्निशं देविमिव स्वभावं-
हृद्यं हृदा संस्मरतो ममात्र ।
स्वर्गाच्च्युतस्येव नरस्य भूमौ
दुःखायते सर्वविधं च सौख्यम् ॥

विशुद्धेन तव प्रेम्णा परितृप्तोऽस्म्यहं यथा ।
मन्ये तथा न संतारं कर्तुमन्येन शक्यते ॥

नैवास्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः
सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात् त्रिभिर्गुणैः

इसी लिए मैंने भी अपने लिए तथा
जैसे अपने अपने सदृश लोगों के लिए
लिखा है —

के जनाः किं प्रकुर्वन्ति, तेन, ते, किं प्रयोजनम्
स्वयं किं कुरुषे विद्वन् तद् विचारय यत्नतः

इसी लिए अभी मैं लिखा है —

एकः शिवः सर्व वपुः समन्ताद्
विद्योतमानो महतामिह दृष्टौ ॥
येषां हि तेषां नहि जन्म मृत्यू
क्रीड़ा स्थली संसृतिरेव नूनम् ।

अपने आप में समाहित रहने पर, सर्व
वपुः की जगह पर सर्व मयम् पढ़ना
चाहिए । और अनिमीलित जगत रूप में
समाहित रहने पर सर्व वपुः शिवः समन्तात्

श्रीः

परमादरणीये प्रभो!

स्मर्यमाणो न भवति, विस्मृतो न विनश्यति।
आत्मा स्वभावतो ह्यात्मा कृत्रिमो न कदाचन॥
अनावृतो न दूरस्थो न समीपे समावृतः।
मारितो म्रियते नैव प्रभो! व्यर्थं विकल्पनम्॥
नैसर्गिकी स्थितिश्चैषाप्य सर्ववादविरोधिनी।
इदमित्थतया वक्तुं न विद्वान् यतते ततः॥
प्रभो! त्वत्कृपया चाद्य पारे वाग्जोऽस्ति पूजितः।
विच्छेदो विद्यते नैव नोपस्थापितः पुनः॥
अत्यद्भुतभास्थितिः प्राप्य कल्पनातीतमार्गगा
नित्यस्पन्दमयी देवी वरदा मेऽस्ति देहगा॥
पञ्चमाध्यायसम्प्रोक्तो ह्युपायः सर्व एव हि
मूलप्रत्ययदोऽप्यत्र आभाति इह सुश्रीमते॥

श्रीमते गुरवे होत्र
द्वैतं मत्वा स्वरागेण।
वोच्यते नाति कृतं नतिरूपा देया
मत्कल्याणमनीषया॥
पञ्चकृत्यपरायण
निर्भयोऽनुग्रहात्मकः।
अहर्निशं चिते देवं
गुरुमेकं स्मरे प्रिये॥

पहला मोड़ First fold

परमार्थे परप्रतिमे प्रभो श्री

भवत्पादसेवायां करोति चेत्त्वत्प्रसादेन

पद्मेरातु समर्थोभा: ।

स्वात्मरूपत्वे संबोधविचारशक्त्या

शब्दार्थ विकल्प प्रसवैः निरस्य ।

पश्यामि पीयूषमयं स्फुरन्तं

विभान्तमस्त्यपार्थमयं किलाहम् ॥

(१)

~~विश्वमर्थ~~ दिग्देशकालाद्यपेत भासकोऽपि

किं तैः परोक्ष्यन्ति मुनयो विदुने

नेदं तथा भातमनुब्रज त्वं

तिरस्कारमाश्रमयं स्वरूपं ॥

(२)

स्वाकृतिमन्विमर्शेन-

कान्तिमाकृतिमन्तः इव

सर्वज्ञः सर्वकर्ताऽपि

स्थितः यैव जगत्यापि वपुष्यपि

(३)

परमार्थे परमप्रतिमे प्रभो श्री

भवन्तर: सेवायां करानि । चित्वत्प्रदत्तान्येव

पदकारानि समर्पितान: ।

स्वरूपात्व संबोधाविच्चारिदक्षाम

शब्दार्थे विकल्प प्रसवरते निरास्य ।

पश्यामि पीयूषमयं स्फुरन्तं

विश्वात्मरूपार्थमयं किलाहम् ॥

(१)

~~विश्वमर्थ~~ दिग्देशकालैरपरैव भासकोऽसि (कर)

चितौ: वाचोनिर्पततिमुखैषि विद्वने (देवि)

नेदंतया भातमनुप्रज त्वं

तिरस्कारमात्मनिशमिर्य स्वरूपं ॥

(२)

स्वाकृतिमं त्वेम शैनर –

कृत्रिमाकृतिमत्तदम:

सर्वज्ञ: सर्वकर्तासि । मे

... ततयैव ... नपुत्यानि

परमादरणीय प्रभो!

स्मर्यमाणो न भवति, विस्मृतो न विनश्यति।
आत्मा स्वभावतो ह्यात्मा कृत्रिमो न कदाचन॥
अनाहतो न दूरस्थो न समीपे समाहतः।
मारितो म्रियते नैव प्रभो! व्यर्थं विकल्पनम्॥
नैसर्गिकी स्थितिश्चेयं सर्ववादानुरोधिनी।
इदमित्थतया वक्तुं न विज्ञानं यतते ततः॥
प्रभो! त्वत्कृपया चार्थं पारे वाग्जोऽस्ति कृतिः।
विच्छेदे विद्यते नैवं नाशस्याविदितं पुनः॥
अस्य कृत्रिमा स्फोतिः प्राक्च कल्पनातीतमार्गगा।
नित्यस्पन्दमयी देवी वशगा मेऽस्ति देहगा॥
पञ्चभावात्मसम्प्रोतो ह्युपायः सर्व एव हि
मूलप्रत्ययबोऽप्यत्र भासमानो सुशोभते॥

श्रीमते गुरवे देवाय
देहिने भवसागरात्।
~~बोधयन्ताति~~ कृतार्थत्वं यया देया
मत्कल्याणमनीषया॥
पञ्चकृत्यपरायण
निश्चयोऽनुग्रहात्मकः।
अहर्निशं च तं देवं
गुरुमेकं श्रियै॥

पहला मोड़ First fold

4

२४११

239

नित्यानन्द सं. विद्यालय
मु. पो. पटहार
माया- हनिनपुरमु-
गामित्रम
जि. समसीपुर

निश्छला निर्मला नित्या
निरवद्या निराकुला
प्रभो ! ते परमाप्रीति-
र्जयतात्श्री महेश्वरे ॥

स्वभावविमले हृदये
प्रमदाचरिते प्रभो ।
आनानन्दभ्रमस्यापि
सम्भवो न कदाचन ॥

अहर्निशं देविभव स्वभावं-
हृत्वं हृदा संस्मरतो ममात्र ।
स्वर्गाच्युतस्येव नरस्य भूमौ
दुःखायते सर्वविधं च सौख्यम् ॥

विशुद्धेन तवप्रेम्णा परितुष्टोऽस्म्यहं यथा ।
मन्ये तथा न संसारे कर्तुमन्येन शक्यते ॥

.....है ।—

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः ।
सत्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्याद त्रिभिर्गुणैः

इसीलिए मैंने भी अपने लिए तथा अ
जैसे अपने अपने सदृश लोगों के लिए
लिखा है—

के जनाः किं प्रकुर्वन्ति तेन, ते, किं प्रयोजनम्
स्वयं किं कुरुषे विद्वन् तद् विचारय यत्नतः ।

इसीलिए अभी मैं लिखा है—

एकः शिवः सर्व वपुः समुत्थाद्
विद्योतमानो महतामिह दृष्टौ ॥
येषां हि तेषां नहि जन्म मृत्यू
क्रीड़ा स्थली संसृति रेव नूनम् ।

अपने आप में समाहित रहने पर, सर्व
वपुः की जगह पर सर्व मयम् पढ़ना
चाहिए । और अभिमत जगत रूप में
समाहित रहने पर सर्व वपुः शिवः समझ-
ना चाहिए ।

श्रीः

परमादरणीये प्रभो !

स्मर्यमाणो न भवति, विस्मृतो न विनश्यति ।
आत्मा स्वभावतो ह्यात्मा कृत्रिमो न कदाचन ॥
अनावृतो न दूरस्थो न समीपे समावृतः ।
मारितो म्रियते नैव प्रभो ! व्यर्थं विकल्पनम् ॥
नैसर्गिकी स्थितिश्चेयं सर्ववादविरोधिनी ।
इदमित्थं तया वक्तुं न विद्वान् यतते ततः ॥
प्रभो ! त्वत्कृपया चार्य वाग्व्रजोऽस्ति प्रवर्तितः ।
चेदेत विदधीते नैव नाध्यस्यापि विदेत् पुनः ॥
अत्यद्भुतोऽनालोकितः प्रवर कल्पनातीत मार्गगा ।
निरपस्पन्दमयी देवी वशगा मेऽस्ति देहगा ॥
पञ्चमाध्यायसम्प्रोक्तो ह्युपायः सर्व एव हि
मूलप्रत्ययवोऽप्यत्र भासमानो ऽस्मि सुशोभते ॥
श्रीमते गुरवे ईश्वर
देहेन मनसा गिरा ।
केवलं नतिरत्नयाः देयाः
मत्कल्याणमनोधाया ॥
पञ्चकृत्यकराधिष
निश्चयोऽनुग्रहात्मकः ।
अहर्निशं चित् देवं
गुरुमेकं श्रयेऽप्रियो ॥

परमार्थे परमप्रतिमे प्रभौ श्री

भवतारः सेवायां करोति चेत् त्वत्प्रपत्त्येव

पदकराति समर्पितम: ।

स्वात्मानं संबोधविस्मरदक्षाम

शब्दानं विकल्पप्रसवरतं निरस्य ।

पश्यामि पीयूषमयं स्फुरन्तं

विभान्तमन्तर्मयं किरणम् ॥

(१)

~~विभवर्थ~~ दिग्देशकालादपचेव भासकोऽपि

किं तैः परिच्छित्तिमुपैषि विद्वन् (देवि)

नेदंतया भातमनुप्रज त्वं

निष्काद भावाधिकमयं स्वरूपं ॥

(२)

स्वाकृत्रिमं विमर्शनार-

कृतिमाकृति मरन्दम्

सर्वज्ञः सर्वकर्तोऽसि

स्वेच्छयैव जगत्यापि वपुष्यपि

(3)

(127)

237

स्वात्मे नव समुल्लसन्ताति सदा स्वरूपचिन्ताहीनः स्वयं
संविद्रूप मृणाल तन्तु मलं विश्वप्रपञ्चं धारयति ।
उत्पत्तिः परिकल्पना त्वदीय देशकाल स्वभाव—
मामूलत्वं, तम एषि निर्मल वपुः स्वच्छः स्वतन्त्रः स्वराट् ॥
(४)

X प्रभो त्वमेवासि विधात्रि दात्री — इन्द्री
समूढ़ चेतस्य परात्मने मे । नस्य, त्वमेव मे
स्तेर तिरस्कार निजरूपभूतम्
शर्म-प्रकाशी च विमुक्तिदात्री ॥
(५)

शर्मशाली प्रकाशित

X उपासितुं ते चरणारविन्दं
नित्यं तु यातं ह्युपलिप्त मनो मे । इ

दौर्भाग्य दुःखान्तमसौ निरुद्धं
दौर्भाग्य अंधकारात्मकैः
दूरं वसन्मोह मुपैति खिद्यते ॥ मूर्छां
(६)

X संज्ञाविहीनस्य कुतो विचारो—
विचार शून्यस्य न वै प्रशान्तिः ।
प्रशान्तिहीनेन न सुखं समेध्यते
दुःखार्पित कुत्र न चास्ति शान्तिः ॥
(७)

X शान्त्या शान्ति कथातीते शान्त्य शान्ति प्रदायिके ।
प्रभो त्वं शरणं मेऽसि त्वमेवासि प्रवर्तिकः ॥ (८)

X विद्यो वित्तिश्च संवित्तिः शक्तिः स्वरूप स्थिरा तथा
प्राणनमपि त्वमेवासि कथं न स्याः प्रिया मम ॥ (९)
सत्यं वाच्मि पुनः सत्यं कार्ये नैवात्र संशयः
X त्वयानवेन प्रभो शक्तं मम हृदय मिव स्थितम् ॥ (१०)
क्रोधेन द्वेषस्तु त्वया कार्ये दुःखितेन वचसि मम
कृपाद्रष्टे त्वया कार्या दीने माये सुखवर्षिणी ॥ (११)
X त्वत्सपर्यानुरागितं न वर्ण्यते कं वै
X कुचरास्यसमुद्भूत नैष्कर्म्यं जानीते मम ॥ (१२)
कर्दमाद्योऽध्यात्मवर्तां जडतां यो जनो गतः
X वेदान्ते न तम त्वत्रापि मनुष्ये त्वं प्रभो कथम् ॥ (१३)
X शिवं, पशुं प्रकुर्वन्ती पशुं चापि शिवं पुनः
ऐश्वर्यमद मत्तासि रौद्रं तां प्रभवं च कः ॥ (१४)
X आवेश्यन्ते प्रभोः शक्तेः परमशान्ति कर यथा
स्वदेवो विमोचते विश्वं स्वदः सर्वं वितरश्यते ॥ (१५)
X चापल्येत्यं तु प्रभो तत्वं, स्थिरं मे केन्द्र पश्यति
प्रकाशते प्रकोशादि विमर्शे बहुरूपकः ॥ (१६)
~~आनन्दाद्ध प्रदाता त्वं प्राप्य प्राप्तमिव प्रभाम ।~~
~~मन्ये~~ आनन्दाद्ध प्रद पर्णं प्राप्य प्राप्तमिव प्रभाम
X मन्ये, तथापि संदिग्धं मनोऽहं संदेह मेति मे ॥ (१७)
प्रतीतिभ्यामनेनैव मनसाऽहं गुरा वहु ।
मतः प्रभो ततो नैतन्मतो विश्वास भागतम् ॥ (१८)
X अजमन्मतः सपर्यां ते कुत्र दावि मयातव ।
प्रसीद परमात्मो देहि मे त्वं प्रदीपितम् ॥ (१९)

पहला मोड़ FIRST FOLD

INLAND LETTER CARD
अन्तर्देशीय पत्र

श्रीः

६ आर. सी. जोशी ज्योतिषी
मीची बाग
वाराणसी
६ अप्रैल ७६

अद्य प्रातः

कं पृच्छामि कथं जाने
कोऽन्या! मेऽस्मि मतिप्रदा।
हे प्रेमे! त्वं हृदिस्थापि
यदि गुप्तेव तिष्ठसि
(१)
कोऽन्यः प्रियतमो लोके
त्वदृते कः सहायकः।
एकाकिनोऽनभिज्ञस्य
पन्थानं को दिशेद् भुवि॥
(२)
सर्वज्ञा सर्वकर्त्री त्वं
सर्वशक्त्यैकशक्तिभूः।
सर्वदाऽप्यासि सर्वेभ्यः
सर्वात्मिन्- किमहं नोहि।
(३)
न जागर्मि शये नापि
न तिष्ठामि व्रजामि न।
विना त्वया कथं चास्मि-
तथापि प्रज्ञा न मेऽधुना॥
(४)

९६७ पृ२२

22 B
238

योऽनुरक्त्री महामाया संसारं ख्याति मातृकेव ।
तेनैवेदान्तीं वरानेकधा कृतार्थ श्रीगुरुणा समा ॥
पशौ नारे विलासवेऽपि का विद्ये यैव कृतोऽनया
तेनैव मे परार्थ्योर्यं दुर्मेदिया विवशीकृतः

तत्र स्तोत्रे महादेवं स्तोतुकामः पुनः पुनः
यत्प्रसादात् स्मृतोऽहं शरकोपार्थ्यपि पाठितः ॥ साजवेऽप्यासि
न प्रमेयमाहं शरकोऽपि यः एवोऽस्मि भवो सम ।
उक्तो बोध्यायितुं किन्तु शरकोऽदातुं तु सर्वदा ॥
पालकस्य रसो देवि पाययित्वैव बोध्यते
न चैवाचार शतेनापि विदग्धैनापि पार्यते । बोध्यते ।
रजोनिद्रोन्मुखतस्य यद्वयीयं न शीघ्यते
तथापि मादृशस्य तद्भक्तस्यापि जायते ।
प्रमेयं त्वत्कृपयैवैतल्लब्धं लब्ध्वा न यत्नतः ।
अहं स्थैर्यं स्थापते तेन यत्नवयातु निर्जीकृतः ॥
सन्तोषो मे महानास्ते नित्यं दत्तमिमं मयेदृशः ।
मन्येऽहं भवतश्चापि सन्तुष्टा तृप्तिमापुर्यात ॥
अतः परं तु किं वाच्यं [illegible] नालोके [illegible]
तथापि [illegible] स्मर्तव्योऽयं निजेनेन;

रा. म.

२२/१
८३६

२

प्रत्युत्तरम्

(स्तोत्रम्)

जाग्रताऽस्मि न सुप्तास्मि
त्वं शिवोऽसि, त्वया सह-
शये आगामि मायामा
विद्योऽव्यास्मि शिवात्मिका
शिवभाव मुपेतस्य (१)
त्वाहं शिवतामयी।
विद्यासाऽस्मि संश्लिष्टा
न भिन्नाः प्रति भाम्यहम्॥
(२)
विश्वभाव मुपेतस्य
पशुतादान सोत्सुका
भिन्नो भूता सदाभामि
बहुरूपा शरीरिणी।
(३)
यथेच्छासि मया साकं-
स्थातुं प्रियतमो मम
तथा तिष्ठ सदैवास्मि
त्वदिच्छाकार रूपिणी॥
नावयोर्भेदलेशोऽऽस्ति न भिन्ना स्थितिरावयोः
त्वमेवासि त्वमेवासि नाहमस्म्यस्मि सर्वदा॥
(४)

[illegible]

इत्थं प्रभो त्वयास्माकं नित्यं त्वमभिलपन्
तथापि कुशलं ज्ञातुं स्पृहन्नस्मेव सर्वदा

प्राणाद्युपाधि परिवर्जितमानमात्रं
विद्योतिताखिलजगद्धृतवस्तुजातम् ।
नित्यं निरावरणमप्रातिम स्वरूपं
वन्दामहेऽनवरतं गुरु लक्ष्मणाख्यम् ॥

अनुयान्तीं शिवं नौमि
श्री शिवां शारिकां सतीम् ।
यस्याश्च कृपया देव्याः
सिध्येदस्माकमीप्सितम् ॥

आलयत्याखिलं पापं
या क्षमा मे शुभाशुभम् ।
तस्यै देया नतिर्दत्ता
मया त्वया प्रभो मम ॥

पश्य; स्थिरत्वमायाहि
निजस्वर्यं प्रभो मम ॥
यस्याधारेण चान्योऽस्ति
तत्स्वरूपं निरञ्जनम्

213 135 213

हन्त्री विपन्नी जगतोऽपि कर्त्री
कृपैव ते नैव जनस्य बुद्धिः।
सर्वार्तिहन्त्री भवदंघ्रि भक्तिः
सापि प्रभो! त्वत्कृपया भवित्री ॥

(५)

नित्यावरोधो तव देव! रूपम्
प्रकाशमानं परितः पुरस्तात्
सर्वादि आद्यन्तविहीनमेवं
पश्यामि देव! कृपया तवैव ॥

(६)

कुत्र भाति कदा भाति
भाति किं वा त्वया विना।
इत्येवं देवं नमस्यामि (नमोवाक्योपश्रेयसे)
सेयमर्चा परा मम ॥

८।

इति रामेश्वरस्य

श्रीः

अयि सर्वात्मिके मे प्रातिभे प्रभे।

श्रीमद्गुरुदेवगुरोर्वर्णितं तदैव मया
प्रेषितं किन्तु नरदत्तोऽपि कोऽपि कृत्वा
तत्प्राप्तिसूचनं दत्तवतीति न विद्मः कुशला
दिकं ततः खिन्नमिव मे मनोऽभूत्। अस्तु
मन्ये भवत्यः समाधिमनुतिष्ठन्त्यः शान्तमनसो
भवन्तीति। यदि भवत् कार्यं तदा किञ्चि
त् करणीयम् इत्यथ मङ्गलमभिलषतो
जनस्य मङ्गलमेव भवतो सर्वत्र।
एते च श्लोकाः श्रीमद्गुरुदेवपादजन्मोत्सवमुपलक्ष्य
प्रेष्यन्ते तस्य प्रायः समयः समागत एव

इति

[illegible]

श्री प्रेमा परमाराध्यो । सर्वार्थो हृदाश्रये ।
प्रकाशयतु मे स्वान्ते पूर्णं पूर्णतया भृशम् ॥

एकान्तवासेन गुरुपरम्परया अन्येन वा केनापि सामायिक समागत हेतुना संकोचितस्वान्तसमुत्थिता सद्भिः कृपाद्रिः सम्बद्धं पत्रं प्राप्य अथ च भवदाज्ञानुष्ठितया मया, श्री जयदेवाति हृ आवायेत्वा भवतः संवादम् ।

अत्र च पत्रे समुद्दिश्य मह्लेखं नाचीक शब्दप्रयोगे भवत्याः, भवतीतरां सुखयाति इत्यलं करोति च पौनःपुन्येन संशयशल्यमाधिशाययन ।

अत्र मतः शैवागम मार्मिकसारतु कर्वन्धाः भवत्याः पर्यन्ते एकान्तवासे एव इत्थे निवातितः स्वात्मविश्रान्ति फलाय ।। कथमिदं न जानाम्यहम् ।
वयन्तु भवद्विधि पूतः स्व स्वरूप मूर्तैकान्ते पदे सदा पारे लब्धान्धितया: देवीमेवं तत्र भवतीं विश्वाविग्रहं सर्वतः सर्वथा सदा पूजयितु मनस्काः सोत्सुका वर्तामहे । अतो पूजया परमानन्द प्रकाशयते किंचित् । ... नियामेन

नमः शङ्कराय ।

शाङ्करी शुद्धविद्येव
पूर्णकारुण्यनिर्भरा ।
सर्वैश्वर्यप्रदा देवी
जयति श्रीगुरुकृपा ॥

(१)

नमो गुरुं महाकालजन्मग्रासावभासकम् ।
स्वातन्त्र्योद्भासिताशेषचमत्कारं लक्ष्मणं प्रभुम् ॥

(२)

स्वातन्त्र्यशक्तिस्तव चिन्मरूपा
निर्माति सर्वं ननु यादृग्भाति ।
यथेच्छसि द्राग्घि तथा भवन्तन्
भवन्तमेवानुगतोऽस्ति सर्वः ॥

(3)

क्रियां च कालं करणं कलां च
योऽपेक्षते कृत्यविधौ न किञ्चित् ।
कुर्वन्निवाप्नोति च कर्तृभावं
नमो गुरुं तं करुणैकमूर्तिम् ॥

(४)

प्रसादमृतास्वाद। शैवस्वभावः
स्वीयस्वभावो भवति प्रसिद्ध ।
पूतस्य मे देव। कृपाकटाक्षै-
र्भवोऽपि स्वोद्भूततया विभाति ॥

(५)

20 B 234

नो विदधाति च स्वीयानि सर्वाणि कर्माणि लौकिक
शाणी इत्यत्र मार्ईतरगीहितानि सर्वाणि तैक
फलानि ।

अस्तु
प्रत्युत्तरप्राप्तिलोभतः एवं ... गयोर्क माये
लिखामि आवश्यं हुँ यथापूर्वं ...
इत्यलं मिति शा. मं.

20 B 234

दैन्ये मे नास्तिकमाध्ये स्वामेनाप्रतिदूर्य
स्तुतायै सर्वातिदैश्व नमः स्यान्मे मुहुर्मुहुः ॥
समर्पितर मति यैत तुभ्यमेकापि तेन वै
अप्राप्यं मायै प्राप्तं कृपानीत् प्रसादितम् ॥

233   20 A

हो रहा है अतः स्वातन्त्र्य हानि के विषय में स्वातन्त्र्य स्पष्ट (?) ला रहे हैं । इस अध्यापन के साथ लोग न्यायशास्त्र भी पढ़ते हैं अतः इसको निग्रह कहा, वस्तुतः तो सर्व शक्तियों सर्व शक्तिमयी ही है अस्तु ।

श्री देवी जी को मेरा साष्टांग नमस्कार ग्रहण करने के लिये कहेंगे तथा पूज्य माता जी तथा प्रिय भाई मोहन लाल जी को प्रणिपात पूर्वक नमस्कार निवेदन करें । घर में अन्य लोगों को भी मेरा नमस्कार निवेदन करेंगे ।

अननुभूत वस्तु को मैं बोल भी नहीं सकता और लिखना तो मेरे लिये अति कठिन काम हो जाता है अतः विलम्ब के लिये क्षमा तथा शान्ति के लिये शक्तिपात आप स्वयं करेंगे ।

हमको तो ऐसा प्रतीत होता है कि सबसे कठिन आणवोपाय है या अन्तिम उपाय आणवोपाय है इस आणवोपाय में भी दो प्रकार के व्यक्ति लगे रहते हैं एक तो अनागत शक्तिपात व्यक्ति और एक तीव्र व्यक्ति मैं हूं और कृपापात्र [illegible] हो निर्भर रहता हूं और मिलता रहता है उसे ग्रहण करता रहता हूं ।

आपके इस पत्र को मैं कृपा समझता हूं क्योंकि यह पत्र मेरे उद्धार = कमलों के यथार्थ समझने के लिये स्वातन्त्र्य के लिये प्रेरित करता है आपके पत्र मेरे लिये सारगर्भ सदा बनी रहती है क्योंकि आपके पत्र की [illegible] रौती भावना इस शून्यमय स्थान में [illegible] आपके पत्र में पाने की लालसा बात यह कि उसी से कभी आप लोगों के दर्शन [illegible] रहा है । [illegible]

उसी समय मुझे यह प्रतीत हुआ था कि अब [illegible] का सौभाग्य कब प्राप्त हो [illegible] वैसे तो शरीर से यहां रहते हुए भी निरन्तर उन चरणों के सान्निध्य में ही मन [illegible] करता रहता हूं उस अलौकिक दृश्य के लिये मेरा मन भी [illegible] है ।

20A   233

अहम्

१

श्रीमच्छ्री गुरुचरण सरोरुहेषु प्रणतीनां सहस्र शतानि साक्षाद्गुरुकृपास्वरूप परमाह्लादमयि पूज्ये विजयतेऽस्तु ।

कुशलपत्र पाकर परमानन्द में मन निमग्न हो गया है यह पत्र तो अपना अपूर्व ही है विलक्षणता से परिपूर्ण है इसमें श्री गुरुदेव के करकमलों से आशीर्वचन विशेष शब्दों से अङ्कित हैं उसपर आपकी अहैतुकी दया दृष्टि से ओत प्रोत है आपने श्री मदभिनव गुप्तपादाचार्य के ४ श्लोक जिस सहृदयता से लिख भेजे हैं उससे मैं अपने को कृतकृत्य = धन्य समझकर अत्यन्त आह्लादित हो गया हूं । इन श्लोकों का उत्तर मैं नहीं दे सका इसका कारण यह है कि ये सब के सब महत्त्व श्लोक मुझे वहीं आने से पहले से ही उपलब्ध हैं इनके आगे श्लोक यही नहीं है ।

विलीने शङ्काचये सम्वादे पारिपूर्णे च विश्वे
गतेऽलोकाचारे गलित विभवे शास्त्रनियमे
अनन्ते भोग्यौघे ग्रसितु [illegible] मिते [illegible] रसां
इदं [illegible] विलीनसे [illegible] प्रदन्तु ॥ १९

और भी "[illegible]" पूर्व १८ श्लोक हैं और इसके [illegible] ३० [illegible] है न मालूम आपको [illegible] उपलब्ध [illegible]

विश्वीं जगन्मयीं देवीम्
शिवाधारां शिवात्मिकाम्।
वन्दे नित्यं प्रभां स्वीयां
भूमौ कश्मीरवासिनीम्।

(१)

संविन्मयीं शरीरस्थां
कश्मीरे तु वपुष्मतीम्।
सरस्वतीं प्रभां वन्दे
शारिकानुगतां सदा॥

(२)

प्रभायै सर्वदायिन्यै
पूज्यायै प्रेषयाम्यहम्।
अनुभूतीर्नवा हृद्याः
परह्लादप्रदायिकाः॥

(३)

अनन्तशक्तिसम्पन्नो
नन्तरूपः शिवोऽस्म्यहम्।
नाहं देहमति प्राण-
शून्यरूपो भवाम्यहम्॥ ४॥

परन्तु आपकी स्तुति तथा सहानुभूति को मैं बारम्बार सराहना

करता हुआ अति दुःखी हो रहा हूं क्योंकि यह लिखते मुझे दुःख

हो रहा है कि इन स्तोत्रों के विषय में मेरी अभी भी न होने

वाली धारणा बनी हुई है अतः इन स्तोत्रों की केवल

शाब्दिक व्याख्या तथा तर्क करने में मैं असमर्थ ही

रहूंगा क्योंकि अनुभव या शैवोपाय स्वयं से ही

शाक्तोपाय क्रम से = क्रियायें

नादस्थं तं [illegible]

अवाप्य: [illegible]

नहीं हो जाता है।

परन्तु आपकी सहानुभूति निष्फल नहीं होगी उसका

यह स्पष्ट फल हो चुका है कि अब मेरी इच्छा इन स्तो-

त्रों के विषय का पूर्ण अनुभव की ओर झुकी हुई हो

रही है इन स्तोत्रों की व्याख्या लिखने का उत्सुक

होने की लालसा से हो उठी है परन्तु होगा तो सब बात

निज स्वातन्त्र्य से ही अतः उसी की शरण में हूं।

बारम्बार आपको प्रणाम करता हूं। आजकल [illegible]

अधिक पढ़ रहे हैं [illegible]

लोगों में शैव शास्त्र [illegible] हो गया है और वे लोग

शैव शास्त्र को अध्ययन [illegible] में लग गये हैं

और मैं [illegible]

है परन्तु यहां [illegible]

नीरूपे सर्वरूपाणि
स्वात्मन्यादाय सर्वतः ।
चिद्व्योम्नि कुलतो नास्ति
योगिनो बाह्यविभ्रमः ॥
(५)

पञ्चकृत्य स्वभावोऽपि
नित्यानुग्रहरूपवान् ।
भास्य भासक रूपोऽपि
संविन्मात्रैकरूपवान् ॥
(६)

यदि सति समरूपं, भाति विश्वं विशालम्
जाति मृति कृतभेदं, कालदिग्देशमूलम्
निरवधि परिपूर्णः, कल्पनातीत रूपः
स्वयमहमिह राजे, सर्वतः पूर्णमेकः ॥
(७)

एक एव महान् सूर्यः
य स्वात्मैव परमः शिवः ।
भासकः सर्व भास्यानि
आत्मनस्तामितोऽनघः ॥
(८)

श्रीमतीं शारिकां देवीं
नित्यानुग्रहरूपिणीम्
वन्दे नित्यं परां शक्तिं
भक्तानुग्रहकारिणीम् ॥

X क्षमाशीलां क्षमां वन्दे
क्षान्तिशान्ति सुखप्रदाम् ।
पूर्णानन्द प्रभापुञ्जैः
प्रोल्लसितानन च्छविम् ॥

युष्माकं कुशलं नापि
मया प्राप्तं प्रभो कथम्
[illegible] काशीमहं गमिष्यामि
वैशाख प्रथमे दिने ।
कृपया कुशलं देयं
अत्र तत्रैव वा त्व… या
उपेक्षा हि न युक्तास्ते
सेवाप्रति त्वं प्रभो मम ॥

पूजावसर माहात्म्ये दातव्या श्रीगुरोः पुरः
नतिः स्तुतिर्मयैषा या प्रेषितास्ति तवार्थया ।
पत्रमप्राप्य ते नित्यं शङ्कते हृदयं मम
किमभूद् कारणं येन न लभेऽहं दलं तव ॥
पत्रं तेऽस्मिन् मासद्वये दत्तं तत्क्षणमुत्तरम्
न जाने किं त्वया लब्धं, लब्धा न लभते क्षणम् ॥
पत्रप्राप्त्यैव कुशलं प्रेषणीयं प्रभो त्वया
विलम्बो नैव कर्तव्यः कालो नातीव वर्तते ॥
नवैव मनुयाच्ये

18 B 230

इत्थं वितर्को बहुधापि चेतसि
वितर्कितं त्वं विदितो जनेषु ।
त्वां नो वितर्कं विनिहत्य शम्भुं
दातेन लोके स्वियमस्त्विह रक्ष ॥

भवकानुचेतःप्य
रामेश्वरानन्द

गम्यागम... दातीतं दृश्यादृश्य विनिर्गतम् ।
प्रभास्वत्पासं पूर्णं नौम्यहं श्रीगुरोः पदम् ॥
संसाराम्बुधौ संमग्न दीनोद्धार धुरन्धरम्
श्रीगुरुं लक्ष्मणाख्यं च वन्दे भैरवोल्लसन्नाम ? ॥
यस्सर्वत्र सदा सर्वैः संसेव्यते सर्वसाधनैः ।
सद्भिः समस्त सम्पत्त्यै सैकः श्रीस्ताति सद्गुरुः ॥

रामेश्वर

18 B 230

सर्वमेतां भवसम्भूत्यै यत्कृपैकः प्रलभ्यते
तं त्वामि स्मरीं साध्वीं सर्वमङ्गलकारिणीम् ॥
अभिन्नामपि तं नौमि भिन्नतां भात कारिणीम् ।
स्वानन्दोल्लासिकां देवीं प्रतिभां स्वामिव प्रभाम ॥
स्वात्मविश्रान्तिसंतृप्तां प्रभे प्रभासय प्रथाम ।
त्वां विना नहि चैतन्यं चेतनस्याव तिष्ठते ॥ सि विदमे
नित्यं ते ऽभिनवं रूपं काशते मे हृदि प्रभे ।
नहि कालकलाङ्केन स्पृश्यते कालजन्मभूः ॥ आशु = दीक्षी
प्रभे त्वं परमेशस्य जगत्प्रयाने वाहिनाम ।
त्वां विना नहि संसारे ऽपवर्गस्त्व दृश्यते नहि ॥
गुरुतत्त्वप्रकाशार्थं कृतकायापि गौरिव ।
अद्भुतकृपामूर्तिर्निरिषैव विराजसे ॥
शास्त्री श्यामिकाशाप्रदुष्टी दृश्यादृश्य दर्शन ।
कर्मी कार्यकारिताश्चापि त्वमेवैका विभासि मे ॥
अनन्तशक्ति संपूर्णा प्रभो चैतन्य चन्द्रिके ।
सर्वतो विलसन्ती त्वं भवभेदविघोचरा ॥
विशुद्ध भावोद्भूत भव संभूता
विशुद्धदेवी कृपया विनिर्गता
विशुद्धभावात् सतत वितन्वती
पदावलीयं वसतात् हृदे ॥ प्रभादेवि

रामेश्वर

नमस्तस्मै महेशाय-
गुरवे लक्ष्मणाय मे ।
शृयने क्रियया दर्शं योऽस्ति
जगदेतच्छिवात्मकम् ॥

भेदबुद्धिरविक्षेपं
त्यक्त्वा देवो यया पुनः ।
तां श्रीशारिकां महादेवीं
नौमि भक्तवरप्रदाम् ॥

सर्वमङ्गलसंहर्त्रीं
सर्वमङ्गलकारिणीम् ।
प्रभो त्वां सततं नौमि
स्थितां स्वां प्रतिभामिव ॥

तलवद् दृश्यते व्योम
खद्योतो हव्यवाडिव ।
न चैवास्ति तलं व्योम्नि
न खद्योते हुताशनः ॥
तस्मात्प्रत्यक्षमप्यर्थं ?
विद्वान्नीक्षेत पण्डितः ।
दर्शनस्य प्रमाणत्वाद्-
इत्यनर्थं प्रकल्पयेत

सर्वेऽपि कारणान्वेषी अनो मुक्तमोऽस्त्ययम् ।
अतस्तेन संहारश्च व्यवहारोऽभिमुच्यते ॥
क्रियाहीनस्वभावे विश्वे । त्वां जानाति सकलं जगत्
व्यवहारस्तु लोकस्य पदार्थैः परिकल्पितैः ॥
तस्माद्दृष्टतत्त्वानां तावदर्थं बहुधा भ्रम-
दर्शनं वैचित्र्यादपि, नित्यमेवानवस्थितम् ॥
त्रयीजां दर्शनं यच्च तत्त्वेऽस्ति च व्यवस्थिते
न तेन व्यवहारोऽस्ति, न तच्छब्दप्रयोजकम् ॥
आकृतिव्यपदेशाभ्यां लौकिके वर्तमाने स्थिते
ज्ञाने शब्दप्रयोगो च सदृशौ बालप्राज्ञयोः ॥
यत्र द्रष्टा च दृश्यं च दर्शनं च विकल्प्यते ।
तस्यैवार्थस्य सत्यत्वं बुद्ध्वा शान्तिर्भवत्युपात्त ॥
उपप्लवो हि ज्ञानस्य बाह्याकारानुपाति ।
कालात्ययमिव तत् तस्य जायते व्यवहारतः ॥ ?
सर्वार्थरूपता शुद्धिर्ज्ञानस्य निरुपाख्यता ।
अतात्विकी तयोरन्यां शुद्धिं वेदान्तिनो मताम् ॥
ध्यनतो हेतुमत्त्वं ~~[illegible]~~ मतत्वं परमार्थतः
योगाभ्यः स्थितप्रज्ञो न नेन विषयः प्रभेः ॥
विकल्पैरुपापितैनैव सर्वो भावेन लौकिकः ।
प्रसिद्धेन पदार्थेन व्यवहारो विधीयते ॥
[illegible] वाद्यैर्व्याति गच्छति ।
[illegible] हुताशनः ॥
[illegible]

17 A 1
230

श्री:

वाणी यस्य सुनिर्मलाति सरसा तापत्रयो ज्झिते-
यद्दृष्टिं करुणाभरां नतजनो द्वारं परिस्पर्धते ।
यत्रैकापि नतिर्ददाति सकलं साम्राज्य मत्यद्भुतं
तत्रैवास्तु महेश्वरे मम गुरौ श्रीलक्ष्मणे मे रतिः ॥

आश्चर्यमेतत्परिभाति नित्यं
नाशाश्यते न प्राप्यते यद्भवदीय पत्रम् । विज्ञते
न कापि वार्ता न च लेख एव
तथापि चित्तं नहि शान्ति मेति ॥ श्=चैत्रे

पत्रं दातव्यं नो दत्वा महत्वं पत्रं न दत्तवान् ।
मन्ये, सर्वप्रदस्यापि पत्रदाने दारिद्र्यता ॥

न्यार्थ वचो, यस्य च, कर्म सर्वं-
स्यन्दीत सुतत्वद्गम गाहितं च ।
नानार्थकावाग् भविता पि तस्य
विद्वेष्यकोऽभूदिति मे वितर्कः ॥

स्वास्थ्यं शरीरे भवतोऽप्यकार्ह्यितं
स्याते तदर्थं बहुलाकुला त्रासि मे ।
अन्येऽपि सर्वे भवतो ऽनुभावतो
दासी कृता स्विकुशलाभिकांक्षीणः ॥

संजात शङ्कोऽस्मि भवानिभूत: प्रमादी किं स्वामि उपेक्षतीति
अतंकपन्नं ममवरम्यदेवी यतोऽहमीतं नाहं सुस्वतीय ॥

229 17 A 1

वाराणसी
6 आर, बी, जोशी ज्योहरी
नीचीबाग ।

प्रणतार्तिनिवारिणौ प्रभायै ते नमोऽस्तु मे ।
मोक्षलक्ष्मी समाश्लिष्टो राजेऽहं त्वत्कृपान्वितः ॥
यस्या दर्शनमात्रेण प्राप्ताविद्यापरा, मया ।
स्तुवन्वे, त्वां तां महाराज्ञीं सर्वदां सर्वदा प्रभे ॥
राजराजेश्वरीं वन्दे प्रभेत्वां चन्द्रविग्रहाम्
साक्षाच्चक्रे महेशाय भक्तार्थं मूर्तिमनुप्रिताम् ॥
तव पत्रं मया ग्रामे प्राप्तं नान्तरीतं पुनः
आशायां प्रतिबद्धो नो तव पत्राभिलाषिणः

त्वद्दर्शनार्थमागन्तुं मनो अद्याहमागतः
आगते मयि सर्वत्र मार्गोऽप्यं प्रवर्तितः ॥
यदा स्थिति भवेन्नसाध्वी मम नागमने पुनः ।
तदैव सत्वरो भूत्वा प्रदक्ष्यामि पदपङ्कजम् ॥
यत्राहं यामि तत्रैव तन्धान्ति मां मम प्रियाः
जनास्ताः कान्त्वया कार्यः सहायो न ममापरः ॥
आगत्यैव मया प्रोक्ता जना: निर्वेदं न वाति नः
गन्तव्यं नास्ति काश्मीरे ह्यस्मिन्नमे तथापि माम् ॥
इदानीमास्मि दैवेन सद्योऽहं यत्नापि स्थितः ।
आगामिक्यायाहं नूनं भवद्गृहद्वारे भाये ॥
देवं वयमाले मे पत्रं भागमनार्य हितनरम ।
अनन्यान दर्शनितायहं भवं वेदवाणि ॥

X प्रकाशिते श्रीबहुरूपगर्भ-

स्तोत्रं मयादाश्रि मनोऽनुकूलम्
विन्यासमस्य च रोचते मे
श्रीलक्ष्मणेन श्रीगुरुणा प्रदर्शितम् ॥

गुरुदृष्टि गुरोरेव कृपापूतैश्च बुध्यते
गुरूणां मे हि ता दृष्टिः सूक्ष्मा भाति हि प्रभे ॥

प्रार्थनीयस्त्वया मह्यं
श्रीमान् सर्वप्रदो गुरुः ।
[illegible] भवेद्भक्ति-
र्दृढा मे गुरुपादयोः ॥

गुरुस्मृतिः श्रीगुरुमूर्तिरेव च
विभातु नित्यं हृदये मदीये ।
आनन्दचित्ते ह्यभापि मनोऽभिरामम्
श्रीलक्ष्मणरूपानन्दकुवरं मम ॥

त्वदनुस्मृतिरेवेयं
रोचते मे प्रभे सदा ।
यया प्रकाश्यतेऽदृश्यं
दृश्यं भूतं च भाव्यपि ॥

नमः श्रीगुरवे तस्मै
यत्कृपा द्वैतध्वंसरी ।
प्रकाशैकस्वरूपेण
भाति श्रीस्वेच्छरवाणिता ॥

सकारस्था महादेवीं
नौमि स्वाश्रितवत्सलाम् ।
सुखसत्कारसद्भाव-
संवित्सन्दोहसूतिदाम् ॥

अनुपाख्यातिकां नौमि
परमां संवित्स्वरूपिणीम् ।
यत्प्रसादमयाप्ता वा
सर्वोपायविनिद्रता ॥

चिरं त्वत्स्मरणादेव शब्दब्रह्म समुच्चरेत्
विभासयति सत्योऽस्यधीन
गुह्यान् गूढतरानपि
भवत्कौरासि स्व[illegible]

२ 173 ~~28~~ 29

त्वमीशवन्द्यैः सततं शिवस्य-

प्रकाशयन्ती निजरूपमाद्यम् ।

(किन्तु) चकास्सि तु त्वं प्रभवान्तिविद्या-

मायादयो याश्च विनं विभान्ति ॥

(४)

प्रभो! त्वदीयोऽस्म्यहमेकधारः

पूज्या त्वमेका मम देवि नित्यम् ।

यांचेन कश्चिन्न च पूजयामि

ध्याये सदाहं चरणाम्बुजं ते ॥

(५)

स्वरूपभान्ती निजसौख्यधात्री

चं यस्य सामुख्यमुपैषि शम्भो! ।

भोगापवर्गौ भवतस्तु तस्य-

सेवाकरौ किङ्करतामुपेतौ ॥

(६)

त्वत्प्रीत्यै प्रसादार्थं स्तौमि त्वं प्रभो मया

कृपामूर्तिः स्तवमाति यथेच्छसि तथा कुरु ॥

१28

पूज्यासि प्रेमास्पदमू त्वमेका

प्रभो! मदीये! निखिलात्मिके! मे ।

पत्न्यासि संजातसुखोक्तिते यम-

प्रीतिः प्रिये! मां मुखरी करोति ॥

(१)

देशे मरौ विद्रुता यथैव

(गर्हं) पार्थं विना स्यात्पथिकस्य नूनम् ।

तथैव वार्ता मिनशाप्य लोके

२ स्नेहानुके पथि गच्छतोऽपि ॥

(२)

परस्परं प्रेमसुधौरभेदिनौः

सुखैकधाम्नोः शिवयोः सुखं स्वयोः ।

(नरस्य भाय्र्येति) अभिज्ञया वक्तुमिहार्हितो नरौ

(नरौ) शिवात्मभावैः परिपुष्टमानसौ ॥

(३)

17॥ ८२७ ८२७ १७॥

चिन्तायाः विषयो योऽस्ति
भिन्नत्वेन शिवात्मनः ।
तस्यान्तेऽपि शोऽपि नास्त्येव
श्रीदेव्याः दीक्षितेन मये ॥

ममतैका महाशत्रुः
पुत्रदारप्रियादिषु ।
ममतायाः बीजं तस्याः शरीरे या ममता
एव प्राणबुद्धिपूर्विका ॥
स्थूलाभिन्नगता ज्ञेया,
सूक्ष्मा स्वस्यैव देहगा ।
यो मूढो भिन्नगां स्थूलां
त्यक्तुं नार्हति चिन्ततः
स कथं सूक्ष्मभूतां तां
शून्यदेहादिगां त्यजेत्
एवं स ममताक्रान्तो म्रियते जायते पुनः

मुक्तत्वं च परत्वं च न मुञ्चति
यो धीरो गुरुतो ज्ञात्वा
स्वात्मानं शिवमद्वयम्
भिन्नप्रमातृतां त्यक्त्वा
स्वं रूपं मा च चिन्तति ॥
स शिवोऽस्य पञ्च भूलोके
पञ्चकृत्यपरायणः ।
सर्वात्मा सर्वकर्त्तापि
संहारवानपि निस्पृहः ।
पञ्चकृत्यरतश्चापि
नित्यानुग्रहरूपवान् ।
नरत्वं दृश्यमानोऽपि
चिदानन्दस्वरूपवान् ॥

स्वाभिन्न रागा बिना देही लभते न सुख
स्वाभिन्न रागवालों के सर्व एव सदा पु

16 B
L26

याविद्या भावेनां भयार्तिहरणे नित्योद्यता— शाश्वती
पूज्या या शरणार्थिनां शरणदा दुःखौघ-निर्घातिनी ।
या शैवी भुवनाश्रिता भगवती शक्तिः परा
तां नित्यं प्रणमाम्यहं नतशिरः— पार्वती
श्री शारिकां वेदिनाम् ॥

प्रणम्य देवीम् प्रणमामि देवं
यदाश्रिता भान्ति समस्तदेवाः ।
श्री लक्ष्मणं दुष्कृतिनाशलक्ष्यं
भुवि स्थितं तं भुवनेशमीशम् ॥

पं
...ति: प... तोर्तं वाराणसी संकेते नैव भवत्या देयम्
...मेव अहं ता० १३ मई दिवसे वाराणसीं आगमि...
...पने श्री गुरुपाद दर्शनार्थं आगमिष्यामि ...

16 B
L25

सोऽस्मिन् जगत्परिस्ते जनस्य सद्यो
दुःखान्यपाकृत्य सुखानि दातुम् ।
एको गुरुर्मे जगतां प्रपूज्यः
श्री लक्ष्मणोऽयं शिव एव पूज्यः ॥

(१)
नैवास्ति कश्चिद्दिवता ददानः
शिवत्वमत्र नृणां पशुतां निवार्य ।
दृष्टः श्रुतो वेदश कर्मकारी
लोके विश्वे न चान्यो गुरुरद्वितीयः ॥

(२)
करुणासागरं ... श्री गुरुं शिवरूपिणम् ।
दर्शनेनैव यः सद्यो दुःखदैन्यनिवारकः ॥

(३)
यस्य स्मरणमात्रेण संसारो भवति ध्रुवम् ।
महानन्दप्रदो नित्यं भक्तिनिर्भरचेतसाम् ॥

(४)
गुरुं गरीयांसमहं भजामि जीवामि मृत्युञ्जयनामधारी ।
यस्य कृपादृष्टि विलुप्तरोगः वाञ्छामि तत्पादरजःप्रसादम् ॥

(५)
मत्पाददर्शनादेवाऽहं शिवत्वमुपागतः ।
लोकेऽपि ...

इत्थं विचिन्त्यै ~~भव~~ तु स्वभावधामा:
स्वामिन्, प्रभो त्वं कुरु मा विषादम् ॥
कः कस्य लोके कृतमकुरुते च
एका त्वमेवासि जगत्स्वरूपा ॥

आजन्म ते देवि! कृता समर्चा
स्य पूज्यस्य देवस्य गुरोः त्वया तु ।
मां चापि लक्षा चिरं च दीपितं त्वं
प्रीत्या कृतेषु स्वविशुद्धबुद्ध्या दृष्ट्या

अतः परं त्वं भव पूर्णशक्तिः
आनन्दमग्ना जगदम्बरूपा ॥
स्वामीन्द्र मग्ना दयया परा हि
लोकान् समुद्धारमनाः प्रिये मे ॥

स्वामीन्द्र ~~स्वामिन्~~ के सदा कार्या
श्रद्धा भक्तिः स्पृहा
एष मृत्युञ्जयो पाद्यो
भाविमुक्तेश्च दर्शकः
लेखकस्य

16 A
227

आशायामायया देव्या
स्पृहया ~~क्र~~ विवशी कृतः ।
असत्यो दुःखितश्चाहं
नित्यमासं पुरा प्रभो ॥१॥
यथा च ग्रस्तं शरीरं मे किञ्चित्कालं
किञ्चित्कालं भवत् पुरा
यथा वमुक्ताया नित्यं-
शरीरम् ग्रस्तं भवति देहिनाम् ॥
कृते तु भोजने याति
पुनरायाति सा सदा ।
आगतः कृत्रिमो रोगो
गतश्चापि तु साम्प्रतम् ॥
बुभुक्षा दैनिको रोगो
रोगः कालिक एव तु
अतः प्रभो त्वया नैव
कार्यो भेदः जयोः प्रिये ।
देह धर्मौ च मोक्षे यो
नाचेन्तो विषया विमौ ॥

15B
L24

[illegible]

निराधारे चिदाकाशे महाह्लाद तरङ्गिताम् ।
पश्यन् स्वात्मनि महायोगी मोक्षलक्ष्मीः प्रतीयते ॥
नित्याह्लादतरङ्गाणां चिदाकाशेऽत्यात्मनि ।
द्रष्टा योगी भवेत्कोऽन्यो विना रामेश्वरं भुवि ॥
महानन्दोर्मिसंघट्ट पारम्पर्य प्रकाशितः
जयताच्छ्री गुरुर्लोके देहहंकारवानपि ॥

यस्य श्रीगुरुमूर्तिकल्पित तनो दृष्ट्याश्रिया चुम्बितो-
भामात्रोऽस्मि विभासनैकविभवः स्वानन्दलीलोत्सवः।
तस्मै श्रीगुरुलक्ष्मणाय महते दिव्याय देवाय मे
अस्तु=स्तात् स्तादेषा नतिरद्भुताद्भुतफला श्रीमज्जिनेत्राय ते ॥ नुमः

या ब्रह्मादि सुरेन्द्रदेवदनुजै नित्यं समाराधिता
श्रेयोदान समुत्सुकं पदरजो यस्याः सदा मादृशे ।
एका या भुवनत्रयस्य जननी पूज्या सतां शान्तिदा
देवी सा जयतात् प्रसन्नमहिमा श्री शारिका सर्वदा ॥
त्रिशक्तिरूपा क्षमयाति पूर्णा
सदानुरक्ता गुरुपादपद्मे ।
येच्छाविहीना दययाति पूर्णा
मा= लक्ष्मीः सा मां क्षमा मङ्गलमातनोतु ॥
शारदा लोकमाता

नमः प्रभावै करुणैकमूर्त्यै
नमोनमः श्री युत शारिकायै ॥

कस्यापि धर्मस्य फलं मनोज्ञं
नितान्त सौख्यस्य निदानभूतम् ।
मदेकपूज्यं हृदयस्य हृद्यं
प्रभो! त्वदीयं ननु पादपद्मम् ॥
(१)
तद्दर्शनेच्छा विवशीकृतोऽयं
दासस्त्वदीयो नहि प्रश्नयोग्यः
वृद्धत्वमाप्तं तु वपुर्मनो मे
त्वद्दर्शनेच्छा युवती सदैव ॥
(२)
प्रीत्या प्रदत्तै र्बहुवस्तुजातै-
र्ग्रन्थादिभिस्तैः परितः स्थितैश्च
संस्मार्यमाणा भवती सदा मे-
पुरः स्थिता स्पर्शविहीनरूपा ॥
(३)
उन्मग्नचित्तो ह्यतः कदाचित्
पादौ गृहीतुं पुरतः प्रयामि ।
रुद्धस्त्वयाहं पुनरेव शान्तो
विशामि स्वात्मेश्च पिबन्निव त्वाम् ॥
(४)

प्रभो! प्रिये! त्वां किमहं लिखामि
स्थितिर्मदीया विदिता तवास्ति
कल्पायते देवि! ~~क्षणं क्षणं~~ मे विना त्वयैव
क्षणं क्षणं, द्रष्टुमिवोत्सुकस्य ॥
(5)
हृद्ये! स्वकीयं हृदयं तवाग्रे
संस्थापितं यद्यपि कोतिसर्वैः
अतः परं त्वं करुणार्णवे! मां
स्वीयेच्छयैवाति नियोक्तुमर्हे ॥
(6)
जोशी स्नेहनिबद्धोऽहं गमिष्यामीति वाचि च
कार्यं किञ्चित्समुद्दिश्याऽऽगन्तुमाज्ञां विधेहि तत्
प्राप्याज्ञां तु तथाभूतां वक्तुं सन्देशमप्यहं
आगमिष्यामि पूज्यस्य श्रीगुरोराश्रयं द्रुतम् ॥
(7)
अतः परं मे शृणु पद्यमेतन्
निविष्टचित्तस्य शिवे त्वयैव
श्रुतेन येनैव समस्तसौख्य-
मूलं शिवत्वं समुपैति सद्यः ॥
(8)

चिदाकाशाभासोऽमृतरससुरापाननिरतो-
महानन्दोल्लासैरविरतसुखैरावृततनुः ।
भवेद्धन्यः कश्चिद्गलितभवबाधोऽपरिमितः
महाहन्ताक्रान्तः परमशिवतुल्यो नरवरः ॥ १
अदेहोऽपि सदेहोऽस्मि
विश्वधारो भुवि स्थितः
अकुर्वन्नप्यहं सर्वं
करोम्यत्रापि निर्भयः ॥ २
इदन्तामानरहिते मयि नित्येऽहमात्मनि ।
विविधानि विचित्राणि भान्ति तुच्छानि सन्ततम् ॥ ३
देहाश्रितं तु तत्सर्वं तुच्छं क्षणिकमास्ति यत् ।
न तद्गृह्णाति मतिमान् योगी स्वात्मनि निश्चलः ॥ ४
आद्यन्तहीने परिपूर्णरूपे
परिस्फुरन्नप्यहमस्मि पूर्णः ।
"सदाऽहमस्मीति विमर्शशक्ति-
प्रियैव धत्ते मम पूर्णतां यत् ॥ ५
स्वात्मानुसन्धिसंजातहर्षोल्लाससुनिर्भरः ।
विहरँल्लोकमार्गेऽपि योगी नाप्नोति संसृतिम्

(३)

14B
L23.

L22 14B

प्रक्रमेन प्रकम्यो मे
प्रेमाधारश्च यः प्रियोऽपि मे
देवो देवस्वश्च भक्तश्च
सन्ति येऽपराश्च ते मम ॥

पूज्याय प्रणतिर्दद्या
गुरवे सर्वदायिने ।
श्रीदेव्यै ब्रह्मवादिन्यै
सत्कार्यै पुनः पुनः ॥

सापि धार्मी क्षमामूर्तिः
अस्मद्देवी सरस्वती ।
सा तिष्ठतीव मे नित्यं
प्रातः परमेश्वरी ॥

तवैव तस्यैव विस्मित मामकास

प्रभा यदीया धृतविग्रहेव
विनेयवर्गांश्च विभासयन्ती ।
विराजते सात्विकयाभिदीप्रा
प्रशान्तमूर्त्या तमनुस्मरामि ॥

स्वीयजनबुद्धीनि । प्राप्ति = प्राप्तवान (५)

विभावयन्नापि न यस्य साम्यं
कदापि कुत्रापि च कोऽपि विद्वान् ।
कथं गुरुः सोऽनुपमाविहीनः
प्रवर्ण्यतां मे तु हृदि स्थितोऽपि ॥

(६)

गुरुरेव परं ज्ञानं गुरुरेव परं तपः ।
गुरुरेव परो मोक्षो गुरुं तस्मिन्नजाम्यहम् ॥

(७)

अकालित सुख दुःखं सर्वभोगैरुपेतम्
विगलित भवपाशं भावनातीतरूपम् ।
बहुविधधृतरूपं ध्यानयोगादगम्यं
भज मम गुरुपादं पूर्णवाञ्छो भव त्वम् ॥

(८) पूर्णताप्राप्तिबीजम् ॥

गुरुरेको जगत्यां तु सर्वसंसारतापहः ।
लोकेन्दुः कलापूर्णो राजतां जनताहृदि ॥

आक्रान्तहीनोऽपि विभोर्हि यस्य
भाति समस्तं भवमश्नुवानः।
संकोचशून्यप्रसरत्प्रकाशः
स मे गुरुः केन कथं स्तुतः स्यात् ॥

(१)

दासीकृतानन्तसहस्रशक्तिः-
शक्तिः प्रदत्ता गुरुणा तु मह्यम्।
तयापि तं स्तोतुमहं विजिह्म-
स्तत्पादवद्यस्मरणं करोमि ॥

(२)

यः संस्मृतस्तन्मयतां ददाति-
विस्फारयन् शक्तिमसीममन्तः। विस्फारयन्-निरोधकः
द्राग् बोधयन् विश्वमयं स्वरूपं
विश्वात्मतां यच्छति तं नतोऽस्मि ॥

३

कालत्रयातीतमिदं सदा यं
नित्यं विभुं व्यापकमद्वितीयम्।
तं दर्शति येन वपुर्विभातं
तं नौमि देवं गुरुमेव शम्भुम् ॥

(४)

परात्मिके! प्रभे! शुभे!
परमानन्ददायिनि
कथं [illegible]यास्म्यहं त्यक्तः
पत्रदानेऽपि सुव्रते
एवं त्वया न कर्तव्यं दासोऽयं ते सदा
न दासः समुपेक्ष्यो हि योऽनन्यगति
चन्द्रप्रभे! शान्तिमयागतश्चायं
त्वय्येव लोको निविडान्ध
सर्वत्र वैकल्यमुपागतोऽयं
जीवन्मृतो जीवति चाशयैव
हे प्रभो! प्रतिभाशून्यस्-
तवकोऽयं निषीदति।
प्रणमन् याचमानोऽयं
पत्रं देवि! कृपान्वितम्
नैष्ठुर्यं न त्वया कार्यं
हृदयस्थे! कदाचन।
प्रसन्नं हृदयं भाति
प्रसन्नायां त्वयि प्रभे! ॥

(21) 13 13.

श्रीकिष्यै लालिकोपण्यै
महारस कौ= श्रीवत्स्यमि
नमोऽस्तु ते महादण्यै
कृपामूर्त्यै पुनर्नमः ॥
(५)
दयादृष्टिः सदा कार्या
प्रेम्णा त्वया सदा मयि ।
त्वया विना जगच्छून्यं
भाति का जगतो यतः ।
(६)
दृश्यादृश्य स्वरूपा त्वं
भुक्ति मुक्ति प्रदायिनी ।
सर्वाभिष्ट प्रदासि त्वं
मह्यं भक्ताय सर्वदा ॥
(७)
आनिर्देश्य रूपाऽसि चोन्ते
विनाऽहं स्थिते मयि ।
सामान्यस्पन्दसद्रूपा
त्वं विमर्शमयी मम ॥
(८)

पि
नित्योदितस्वरूपा त्वं भासमानासि भातिका ।
बहिरन्तर्विभासानां सर्वेषां भातिभासिनाम् ॥
(९)
शुद्धसंवित्स्वरूपा त्वं स्वप्रकाशा निरञ्जना ।
यथा देहाश्रया भाति तथा देहं विनापि च ॥
(१०)
अखण्डितामनाद्यन्तां भजे नित्यां स्वसंविदम् ।
त्वद्रूपां न प्रमोः स्वल्पां श्रयेऽहं देहसंस्थिताम् ॥
(११)
नित्यासि पूर्णासि निराश्रयासि
व्यतीत देहादि नितान्त भावा ।
स्वातन्त्र्यशक्तिश्च चिदम्बरा त्वं
शिवादि पृथ्व्यन्ततयैव भासि ॥
(१२)
त्वत्तो विभिन्नं नहि किञ्चिदस्ति
विभाति चैका सकलस्वरूपा ।
त्वदात्मतामाप्य इदाह भाति
क्षणं प्रभो त्वां नहि विस्मरामि ॥
(१३)

221 BA

सिद्धैव स्मरणात्रैव गमीष्यति धन्यं न कुतः

मम तु तथा यथा नाकं वसेत् त्वमेव संश्रये।

(१४)

आनन्दं भवितुं ज्ञातुं वा यच्च प्राप्नोम्यपूर्णताम्।

पूर्णतां विदधे मन्नाथ! त्वयैवानिवारणाम्॥

(१५)

स्वरूपानिष्ठस्य, निजस्वरूपं-

विभाति विश्वं नाहं भिन्नरूपम्।

न भेदोऽस्ति तस्य न द्वैतमेव

शिवोऽस्मि ज्ञात्वैति विश्वरूपः॥

(१६)

ज्ञात्वा दृष्ट्वा स्वरूपं स्वं नित्यमेव सुखस्थितम्

स्वयं प्रकाशमानत्वं सुस्थिरो भव हे प्रभो!॥

(१७)

योऽभिज्ञाय स्वात्मं गुरोः कृपातः

स्वं विद्धि मतं शिवमद्वितीयम्।

स व्यापको नित्य, इत्यवदं हे

तिष्ठन् निवसति गतबन्धमोक्षः॥

(१८)

...प्राप्ते देहेऽस्मिन् कार्यो पौनःपुन्येन सर्वदा-

सिद्धैः सिद्धार्थसाधिभैः

प्रभायै प्रातिभाज्ञुषे।

नमस्तुभ्यं वरारोहे!

मङ्गलं मे सदा कुरु॥

(१)

पत्रमेकं ज्ञात दत्तं

हे प्रभो! तव सन्निधौ।

अद्यप्युत्तरं तथापि दत्तं

कारणं नाहि वेद्म्यहम्॥

(२)

श्री ईश्वरं वक्तव्योऽहं

गमिष्यामीति निश्चयम्।

परात् कृतवानास्मि

बाधा किन्तु समागता॥

(३)

अधुना स्थितो मिलनोऽस्मि

कोऽपि नैव करन्तुं प्रभुः

तत्रागन्तुं मनो यस्मात्

तत्रैवास्ति सदा मम॥

(४)

नतोऽस्मि कुशलीनाथं

भुक्तिमुक्तिप्रदायिनौ ।
पादौ श्री लक्ष्मणारण्यस्य
गुरोर्नौमि पुनः पुनः ॥
(८) मुहुर्मुहुः

येन श्री देवदेवेन-
गुरुणा श्रीलक्ष्मणेन हि ।
अहमारण्य पादे पूर्णे-
स्थापितोऽस्मि मृत्युजित् ॥
(९)

तमेवैकं नित्यं मरणभयहन्तारमनिशं
भजे, नौमि, ध्याये, निखिलसुखबीजं, भुवि नृणाम्
इहाद्वैतं रूपं निजपरविहीनं प्रकटयन्
... यो हृदयपद संस्थो गुरुवरः ॥
(१०)

... प्रभोः प्रभुतां ददाति
... न च कापि कदापि ...
... शिवतामिति ...
... विधुनोति ... ॥
(११)

तत्पादपद्मं बहुपुण्यदृश्यं
लब्धं मया तत्कृपया बलेन
संस्थापितं तद्धृदये ...
सर्वत्र ...
(१२)

... ब्रह्म भुवनालोकाः स्वीयाङ्कम् ...
... कृपामूर्तेः कृपया, ...
... परोदेवः सर्वसिद्धिप्र-
... ज्ञानमि गुरोर्न ...
(१३)

अहो तुर्योऽस्मि सर्वत्र
हेतुः ... स्को ...
स देवो मे गुरुः श्री
लक्ष्मणो मम रक्षकः ॥
(१४)

... प्रयच्छन्ति मुक्तिमार्गं
... मोक्षं च प्रत्यक्षं ददन्मे गुरुलक्ष्मणः
(१५)

12B 418

३

०यातं येन समस्तमेव भुवनं-
तं सृज्य शक्त्या स्वया
स्वात्मा-च्छादन पण्डितेन पश्यता-
स्वामिन् पुन भास्यते।
लीलाकल्पित कार्यकारणजुषा-
भिज्ञाय सर्पं निजम
भाति श्रीगुरुवर्य पापे भवने-
तं नौम्यहं लक्ष्मणम्॥

(४)

कारुण्यमूर्ति जगदेक सारं
भवाब्धिदं भानुसहस्रतुल्यम।
अनादिमोहान्धनिशोष्णरश्मिं
शिवस्वभावं ददतं नतोऽस्मि॥

(५)

यत्पादपद्मेक्षणमात्रतो मे
साफल्यमाप्तं नरजन्म लोके।
देवाय तस्मै गुरुलक्ष्मणाय
मोहान्धहन्त्रे सततं नमो मे॥

(६)

12 A 417

ॐ नमः श्रीगुरवे ।

श्रीपूज्यपीठे निहितोऽस्मि येन
शिवावतारेण च दैशिकेन
साक्षाच्छिवं तं सततं नमामि
श्रीलक्ष्मणारण्य पशुताप हारम्
(१)

आसन्तु योऽहं नरदेहबद्धो –
मलीमसात्मा सुखदुःखभागी ।
प्रकाशपुञ्जो गतदेहभाव –
आह्लादपूर्णोऽस्मि गुरोः कृपातः
(२)

स्वाभिज्ञया स्वीय विनेय वर्गान्
स्वस्थानप्रकुर्वन् गुरुलक्ष्मणो नः
संदृश्यमानो नरविग्रहीव
साक्षाच्छिवोऽनुग्रहतत्परोऽयम्
(३)

2

औ इयहं सततं देवीं सारिकां ब्रह्मवादिनीम्
स्मरणेनापि यस्यास्तु महामोहः प्रलीयते ॥

(१)

यस्याः प्रभायाः प्रतिमा प्रभाति
यत्राशेषजगत् भेदबन्ध्यः ।
सा सारिका मे भवतु प्रसन्ना
समस्तसम्पत्प्रविकासनाय ॥

(२)

जानाति यानैव मृतिं च जन्म
नित्यालिया ... ... स्वरूपा ।
... कामदा शिवानुगा या
सा सारिका हन्तु जनस्य मायाम् ।

(३)

... भारत मायभूता
... विशद ... कृपालुः ।
... दावानल दग्धमानान्
... शान्तिसुतान् विधा

(४)

11B 416

महानन्दरसास्वादे प्रेम्णा सम्प्रदुयान्वया ।
पालितो वर्द्धितश्चापि नुचितो यच्च साकृतिः ॥

(१)

[illegible]मृदरसेनैव पिपासा वर्धते मम ।
यान्त्यन्दितिकरुणा, करुणा[illegible] हृदि ॥

(२)

पत्रेणानेन नूनं त्वं मन्यसे मामुपस्थितम् ।
कर्तृ पत्रेण लप्स्यतेऽनेन सम्मानं स्थास्यतेऽपि तया सह ॥
सत्यं पत्रमिदं [illegible], मतोऽप्यधिकतरं प्रभो ।
स्थास्यत्यपि त्वया साकं हृदयस्पर्शि ते भवेत् ॥

(४)

अस्तित्वं दुःखकलना, रमे साकं त्वयाद्य नो
त्वं प्रिये सदा हृदयदर्शिनी मे हृदि स्थिता ॥१
परवाङ्मयमेवेदं विश्वं भाति विकल्पितम् ।
निस्तत्त्वं तत्त्वसंभूतं सबाह्यं बहिरस्थवत् ॥२ च्चौ कुँ
सत्यं वस्तु सदैवास्ति नित्यमेकं तदेव हि ।
तदेव त्वं सदैवासि भासमानस्वरूपिणी ॥३
भासमानमिदं सर्वं कालिकं न स्थिरं प्रभो ॥
स्वरूपं पररूपं वा भासमाने न सुस्थिरम् ॥४
सुखं दुःखं क्रिया कालः समाधिश्चानुभूतयः ।
देहमाश्रित्य भासन्ते देहोऽयं कालिकः स्वयम् ॥५

श्रीः 11B 416

यत्पादपङ्कजरजःकणिकाप्रसाद
भासे निरन्तरमहं गतमोहशोकः ।
वन्दे तमेकशरणं भुवि मानवानां
श्री[illegible] गुरुवरं धृतदेहमीशम् ॥

(१)

अखण्डब्रह्ममयं शरीरं
कृतं ममेदं गुरुणा तु येन ।
अनर्घपुण्योदयदर्शनोऽसौ
ददातु भक्तिं निजपादपद्मे ॥

(२)

ज्ञानक्रिये तस्य विभासमाने
शक्ती महेशस्य शरीरवत्यौ ।
श्रीशारिका स्वच्छतमप्रभे ये
वन्दे सदा ते मम वन्दनीये ॥

(३)

श्रेष्ठा क्षमा सा मम वन्दनीया
लक्ष्मीरिवाभाति च याश्रमस्य ।
स्वच्छां प्रसन्नां सुमुखीं सुवाणीं
यां मोक्षलक्ष्मीं मनुते मनो मे ॥

(४)

(A) 416

देहाद्भिन्नः सदासि त्वं
इति ज्ञानेन बुध्यते ।
नेदं ज्ञानं क्रियासाध्यं
कोटिशतैरपि ॥ ६

स्वरूपं सर्वदेवानां निष्क्रियं सर्वकृत् च
निजानन्दमयं नित्यं जगदानन्ददायकम् ॥ ७

सावधानमना भूत्वा
तत्रास्स्व सर्वदा प्रभो ।
प्रकाशे मा यतस्व त्वं
सावधाना सदा भव ॥ ८

आत्मुक्तं यन्मया दिव्ये
... तत् त्वया ...
सर्वज्ञा त्वं प्रभा देवी
कृपामूर्तिशरीरिणि ॥ ९

पत्रं प्राप्तं कृपारूपं मतोऽस्मि कृपया तव ।
उक्तं तव ... क्षम्यं, यद्यपि ... मे ...
... पत्रं देवीजन्मी सर्वं तत्
भाग्यं स्वं ... मुक्तत्वं प्राप्तवानहम् । तवानुचरस्य

अद्य प्रभो त्वं मदभिन्नरूपा
हृदयसे — देहात्मना तत्र बहि...
किन्त्वत्र ज्ञानवीहि रीद्व...
त्वद्ध्यानमग्नेन मया ...

संविद्रूपा सदा स्वच्छा प्रभो त्वं
संविदः ... विरज्येत सर्वसम्पत्ति...

(२)

मनो ह्यात्मि... मौ हृतं ते, मे मनः प्र...
मनः: ... तन्मयीसोऽकं निर्मना अस्म्यहं

(३)

त्वदग्रे यदहं वाचे ब्रवीमि त्वं च यच्च त...
नायात्येव स्मृतौ पश्चात् त्वदेकमनसो म...

(४)

ज्ञानामृतरसास्वादो ज्ञानिनैवानुभूयते
स्नेहे यदस्ति तच्चापि स्नेहिनैवानुभूयते

(५)

मनोहीनस्य मे दुःखं सुखं चापि न विद्यते
सखी स्यात्तु तदैवाहं प्रेष्यते तत् त्वया यदा ।

(६)

मनः:

विश्वविद्यालयेनैतेन
मालवीयेन पूजितः।
अध्याप्यहं महामहो-
पाध्यायोपाधिना युतः॥
(१४)
उपाधिनानेन किमत्र नूनं
फलं विश्वोत्तमो मम।
वेद्मि च श्रीगुरुदेवस्य-
कृपा लोकेऽपि भूतिदा॥
(१५)
देवि सर्वेभ्यः प्रियबन्धुभ्यो
नतिर्देया त्वया प्रिये।
क्रियते यत्र मया प्रेम्णा
नतेन शिरसाऽधुना॥
(१६)
स्वच्छः स्वतन्त्रः परिपूर्णरूपः
स्वात्मा शिवोऽनाविल एकरूपः।
नित्योऽद्वितीयः परिभासमानोऽ-
गाधो न मार्ग्यः स तु सिद्ध एव॥
१७

[illegible]

नमः श्री प्रभादेव्यै।

पूर्णा सदैवास्यमिता च शून्या
देहाद्यहन्तारहिताऽसि नित्या।
स्वामिक्रियैवासि शिवात्मिका त्वं
नास्त्येव किञ्चित्तव वाञ्छनीयम्॥
(१)
प्रभे मदीये मदभिन्नरूपे!
करोषि यत् पश्यसि बुध्यसे यत्।
शृणोषि यद्वा पठसीह नित्यं
प्रकाशमानं त्वमसि क्रियाभिः॥
(२)
सदा प्रसन्ना भव भास्वरा त्वं
देदीप्यमाना निखिलक्रियाभिः।
स्वस्थैव भूत्वा भव सुस्थिरा त्वं
अहो हि कार्यं भवितुं च बोद्धुम्॥
(३)
प्रकाशमानासि सदैव त्वमेव, ततो न भिन्नं नहि भासमानम्
यद् भासते त्वं बोधि लोके तदेव विभाति भिन्नं त्वदभिन्नरूपे
(४) तस्यैव त्वदभिन्नतस्य

1 48

देहाद्भिन्नः सदासि त्वं
इति ज्ञानेन बुध्यते ।
नेदं ज्ञानं क्रियासाध्यं
जन्मकोटिशतैरपि ॥ ६

स्वरूपं सर्वदेवानां निष्क्रियं सर्वकर्तृ च
निजानन्दमयं नित्यं जगदानन्ददायकम् ॥ ७

सावधानमना भूत्वा
तत्रास्स्व सर्वदा प्रभो ।
प्रत्यक्षं मा यतस्व त्वं
सावधाना सदा भव ॥ ८

आत्मरूपं यन्मया दिव्ये
ज्ञातव्यं तत् त्वया प्रिये ।
सर्वज्ञा त्वं प्रभादेवी
कृपामूर्तिर्गरीयसी ॥ ९

पत्रं प्राप्तं कृपारूपं धन्योऽस्मि कृपया तव ।
उक्तं तव लग्नं क्षम्यं, पद्माभिन्नाभिभाषणम्
व्यतीत्यैवागतं पत्रं देवीजन्मौ सर्वं तत्।
भाग्यं स्वं मन्ये यन्नैव मुक्तत्वं प्राप्तवानहम् । त्वदनुचरस्य

2

श्रेष्ठ! प्रभो त्वं मदभिन्नरूपे ।
हृदयसे
देहात्मना तत्र बहिः स्थितोऽसि
किन्त्वत्र चान्तर्बहिरीक्ष्यसे त्वं
त्वद्ध्यानमग्नेन मया [illegible] ॥
[illegible]

संविद्रूपा सदा स्वच्छा प्रभो त्वं मे हृदि स्थि
संविदः को विरज्येत सर्वसम्पत्तिसम्पदः ॥
(२)
मनो हारिणि जगन्मौ हृते ते, मे मनः प्रभो ।
मनः भाग्यतं तन्मयं लोके निर्मना अस्म्यहं ततः ॥
(३)
त्वदग्रे यदहं वाचे ब्रवीमि त्वं च यच्च तत् ।
नायात्येव स्मृतौ पश्चात् त्वदेकमनसो मम ॥
(४)
ज्ञानामृतरसास्वादो ज्ञानिनैवानुभूयते ।
स्नेहे यदस्ति तच्चापि स्नेहिनैवानुभूयते ॥
(५)
मनोहीनस्य मे दुःखं सुखं चापि न विद्यते ।
सुखी स्यां तु तदैवाहं प्रेष्यते तत् त्वया यदा ॥
मनः
(६)

415 1013

हिन्दू

विश्वविद्यालयेनात्र
मालवीयेन पूजितः ।
अध्यास्य हि महामुख्यो-
पाध्यायो वाधिना युतः ॥
(१०)

उपाधिना किमेतेन
फलं विश्वोत्तमो मम ।
वेद्मि श्रीगुरुदेवस्य-
कृपा लोकेऽति भूतिदा ॥
(१२)

सर्वेभ्यः प्रिय बन्धुभ्यो
नातिदेया त्वया प्रभे ।
दीपो क्रियते परमया प्रेम्णा
नर्तनं शिरसाञ्जुना ॥
(१३)

स्वच्छः स्वतन्त्रः परिपूर्णरूपः
स्वात्मा शिवोऽनाविल एकरूपः ।
नित्योऽद्वितीयः परिभासमानोऽ-
गाधो न मार्ग्यः स तु सिद्ध एव ॥
१४

[illegible]

1013 & 415

नमः श्री प्रभादेव्यै ।

पूर्णा सदैवास्यमिलाषशून्या
देहाद्यहन्तारहिता भासि नित्या ।
स्वात्मक्रियैवासि शिवात्मिका त्वं
नास्त्येव किञ्चित्तव वाञ्छनीयम् ॥
(१)

प्रभे मदीये मदभिन्नरूपे ।
करोषि यत् पश्यसि बुध्यसे यत् ।
शृणोषि वक्षि पठसीह नित्यं-
प्रकाशमाना स्वभासि क्रियाभिः ॥
(२)

सदा प्रसन्ना भव भास्वरा त्वं
देदीप्यमाना निखिलक्रियाभिः ।
स्वस्थैव भूत्वा भव सुस्थिरा त्वं
जहीहि काङ्क्षां भवितुं च बोद्धुम् ॥
(३)

प्रकाशमानासि सदा त्वमेवात्मत्वेन मत्तो न हि भासि भिन्ना ।
यद् भासि सर्वं निखिलं तदेव विभाति मत्तो त्वदभिन्नतैव ।
(४) तस्यैव त्वदभिन्नस्य

46

देहादिभिन्नः सदासि त्वं
इति ज्ञानेन बुध्यते ।
नेदं ज्ञानं क्रियासाध्यं
जन्मकोटिशतैरपि ॥ ६

स्वरूपं सर्वदेवासि निष्क्रियं सर्वकृत् च
नित्यानन्दमयं नित्यं जगदानन्ददायकम् ॥ ७

सावधानमना भूत्वा
तत्रास्स्व सर्वदा प्रभो ।
प्रमादं मा यतस्व त्वं
सावधानो सदा भव ॥ ८

अत्युक्तं यन्मया दिव्ये !
क्षन्तव्यं तत् त्वया प्रिये ॥
सर्वज्ञा त्वं प्रभादेवी
कृपामूर्तिर्गरीयसि ॥ ९

पत्रं प्राप्तं कृपारूपं धन्योऽस्मि कृपया तव ।
उक्तं तत्त्वज्ञानं क्षान्त्यं, यदा ऽभिन्ना मे मामकम्
यतीन्द्रं वागतं पत्रं देवीजन्मौ सर्वं तत्,
भाग्यं स्वं मन्येय नैव मूकत्वं प्राप्तवानहम् । तवानुचरस्य

देहात् प्रभोऽत्वं मदाभिन्नस्वरूपे ।

हृदयसे देहात्मना तत्र बहिः स्थितोऽसि
किन्त्वत्र चात्मना हि हृदयसे त्वं
त्वद्ध्यानमग्नेन मया [illegible]
॥ (१)

संविद्रूपा सदा स्वच्छा प्रभो त्वं मे हृदि स्थिता
संविदः को विरज्येत सर्वसम्पत्तिसम्पदः
(२)

मनो हारिणि कृपया मे हृते ते, मे मनः प्रभो ।
मन्नः आघ्रातं तन्मयी सा कं निमग्ना अस्मि अहं ततः ॥
(३)

त्वदग्रे यदहं वाचो ब्रवीमि त्वं न यच्च तत् ।
नायात्येव स्मृतौ चाऽपि त्वदेकमनसो मम ॥
(४)

ज्ञानामृतरसास्वादो ज्ञानिनैवानुभूयते ।
स्नेहे यदस्ति तच्चापि स्नेहिनैवानुभूयते ॥
(५)

मनो हीनस्य मे दुःखं सुखं चापि न विद्यते ।
सुखी स्यान्तु तदैवाहं दीयते तत् त्वया यदा ॥
(६)
मनः

विश्वविद्यालयेनात्र
मालवीयेन पूजितः ।
अध्यापयद् महामहो-
पाध्यायोपाधिना युतः ॥
(१०)
उपाधिर्नो [illegible]
फलं विश्वोत्तमो मम ।
वेद्मि श्रीगुरुदेवस्य
कृपा लोकेऽपि भूतिदा ॥
(११)
सर्वेभ्यः प्रिय बन्धुभ्यो
नातिदया त्वया प्रभो ।
क्रियते यत्र मया प्रेम्णा
नतेन शिरसाञ्जलिः ॥
(१२)
स्वच्छः स्वतन्त्रः परिपूर्णरूपः
स्वात्मा शिवोऽनाविल एकरूपः ।
नित्योऽद्वितीयः परिभासमानोऽ-
गाधो न मार्ग्यः स तु सिद्ध एव ॥
१३

नमः श्री प्रभादेव्यै ।

पूर्णा सदैवास्यमिला बशून्या
देहादयहन्तारहिताऽसि नित्या ।
स्वामिक्रियैवासि शिवात्मिका त्वं
नास्त्येव किञ्चित्तव काङ्क्षणीयम् ॥
(१)
प्रभे मदीये मदभिन्नरूपे !
करोषि यत् पश्यसि बुध्यसे यत् ।
शृणोषि यद्वा पठसीह नित्यं
प्रकाशमाना त्वमसि क्रियाभिः ॥
(२)
सदा प्रसन्ना भव भास्वरा त्वं
देदीप्यमाना निखिलक्रियाभिः ।
स्वस्थैव भूत्वा भव सुस्थिरा त्वं
नहीह काङ्क्षा भवितुं च बोद्धुम् ॥
(३)
प्रकाशमाना सि सदैव नित्यं त्वमेव [illegible] नौर भासि [illegible]
यद् भासि सर्वं [illegible] तदेव विभाति [illegible] त्वदभिन्नं [illegible]
(४) तस्यैव [illegible]

श्री शम्भु स्वामी

कारुण्यमूर्तिं हृदयेवसन्तीं
देवीं प्रभां नौमि बहिर्गतां त्वाम् ।
तिष्ठ सुरैर्योगिजनैरदृश्यां
दासाय स्वचक्षुषः स्फुरन्तीम् ॥
(१)
प्रसादगुणसम्पन्नां लोकानुग्रहकारिणीम्
देवीं श्री शारिकां नौमि मयि दीने दयावतीम्
(२)
दासोऽयं ते प्रभे नित्यं सर्वसम्पत्तिसंयुतः
कृपया ते भवे भाति त्वत्प्रभा जातिलोचितः ॥
(३)
गुरुभक्तिरसैः पुष्टा हृष्टा स्वात्मज्ञया सदा,
भवतीव प्रभे नेऽपि राजते धिषणा सदा ॥
(४)
संसेव्य मानोऽपि शिवोऽपि माम्
तावन्न तृप्तिं लभते, न यावत् ।
आत्मानमद्वैतमुपेत्य गूढं
निःशेषतो भेदमपाकरोति ॥
(५)
पूज्ये! प्रभे! त्वां सततं स्मरामि
प्रिये प्रभे! त्वां मनसा नमामि ।
पश्यामि संस्मृत्य पुरः स्थितां त्वां
नाथामि दृष्टिं नयनागृहीतः ॥
(६)
अन्यकिञ्चन त्वं च विकुसन त्वं
सर्वात्मभावश्च समस्त सिद्धः।
अप्राप्य सम्यग्गिरिमां मनोऽघां
परोपकारः परवश्च नैव ॥
८
विविच्य चैवं मनसा मयापि
सुमाधिनो वापि समात्मभावः।
विश्वासनेऽहं गतदेहभावः
प्रभोन जानामि कथं स्थितोऽस्मि ॥
८
निरञ्जनाह्लादमयीं प्रभे त्वां
विभ्राजमानां परितः स्फुरन्तीम् ।
देशादिशून्यां नमनाश्रयन्तीं
मनोजगविद्यां हितदोषहन्त्रीम् ॥
९

44 9B

प्रणाम जी
अब मैं शास्त्रों के मत का अनुमान
का परम विज्ञान हूं अनुभूति नहीं एकदम
शरीर में प्राण पर स्पन्द कर रहा है ऐसे किसी
अनुभूत आनन्द का अनुभव करता हूं। परन्तु
ईश्वर प्रतीत होता है कि मैं उसी में आधार हूं।
ऐसा अब अहंकार दाबने होता रहा न सकें और
बने जाता हूं।

414 9B

अनुभव होता है वैसा ही और ऐसे परमात्मा की
आवरण स्वभावतः प्राकृतिक होते ही जाते हैं।
फिर श्री ईश्वर देवी जी ने मुझे यह कहा था
कि मैं प्रणाम करूं। फिर मैं क्यों चिन्तन
विचार करूं अभी करूं अभी ही इस तरह चाहिये
बस यही पूछना है कि क्या करना है।

आपका ही

र. ली.

श्री दीनानाथ जी का पत्र 16 जनवरी का दिया
आने के बाद मुझे मिला है। पहले 3 तारीख
में जोशी जी के यहां लड़की की शादी
होने के कारण उन्हें अब तक मैं
श्री गुरुदेव के दर्शन नहीं कर पाया
श्री गुरुदेव जी को मेरा साष्टांग प्रणाम
निवेदन करें तथा श्री देवी जी को।
आपके मेरा नमस्कार
गयो कहीं।

९A ५१२

अनन्तानन्द सन्दोह लोला वितरण चतुरे ।
परमेश्वर्ये प्रभो ।

यह पत्र मैं आपको केवल एक बात की जिज्ञासा है से लिख रहा हूं और पहले एक पत्र मैं भेज चुका हूं ।

श्री गुरु महोत्सव के दिन जब मैं प्रायः शरण में बैठा था तब श्री देवजी ने अब श्री गुरु महाराज तथा मेरे शिर पर कुछ फूल आदि रखी तो धीरे वारि बन्दूक कर आवाज जब हुई तो सुनाई पड़ी इस बात को जब मैं श्री देवी जी से प्रसंगवश पूछा तो उन्होंने कुछ उत्तर दिया कि मैं मरलों को फायर कर छोड़ने कह रखा था ।

परन्तु मैं अब यहां एक दिन नहीं अनेक दिन देख रहा हूं जब जब मैं पर्यंक का स्वभावतः भेदन करता हूं तब तब सूक्ष्म या स्थूल जैसे चक्र भेदन में

२१३ ९A

सर्वार्थसाधिका पूर्णा प्रभो प्रातिभा विदे ।
अयि देया कृपादृष्टिः सदैव करुणार्णवे ॥

पुरुषार्थः यशोराशि देहाद्यात्मवतः प्रभो ।
न से, ते, पुरुषार्थोऽस्ति स्वात्मानन्दमिमं जानतः ॥
धर्मार्थकाममोक्षाख्या वै पुरुषार्थविधा स्थिताः ।
अथवा पौरुषार्थेभ्यो भवन्ति तत्फलप्रदाः ॥ १- धर्मादि
प्रार्थितं स्वस्वरूपाय सर्वरूपस्य योगिनः ।
किमस्ति हृद् यदर्थं स्याद् यत्नः कोऽपि मनागपि ॥
मायावद् विभान्तीमे कलाजन्याः सदातनाः ।
पुरुषार्थादयः सर्वे योगिनोऽपि वशोऽस्त्विव ॥
किन्तु ते सन्ति विभान्ति न कोऽपि द्रवति विक्रियाम् ।
सर्वोत्तमार्थं विभव इत्येवं प्रतिजानतः ॥
अपरिज्ञाततत्त्वस्य क्रियाः काश्चित् फलप्रदाः
भवन्ति, न तु विज्ञस्य क्रिया काचित् फलप्रदा ॥
अनादिनित्य संसारे लगाते लानि फलानि तु
लब्धानि केचिल्लभन्ते लप्स्यन्ते चापरेऽप्यपि ॥
तैस्तैरेव फलैर्मूढाः सुखदुःखादिभागिनः ।
भवन्त्यमूढास्तैरेव स्वस्वरूपमयाः सदा ॥
निग्रहानुग्रहौ यावद् द्वावपि स्वस्वरूपगौ ।
न स्वभावतया ~~[illegible]~~ तावदितः कथं भवेत् ॥
स्वप्रकाशमहं देवं स्वात्मानं संविदन्नपि ।
न शक्नोमि तं मतं नित्यं पञ्चकृत्यकरं विना ॥

[illegible] शिवेशितारम्

[illegible] स्वयमेवं तु कामम्
त्वत्कैर्माधुर्यवर्तीहैर्वाक्शङ्करायं तनुभृते ॥
देव्यैव शारिकायै मे नालिरैवा पूर्ण: पूर्ण:
सर्वकुशविनाशिनै प्रभे । वाच्यार्थं प्रत्यहमि ॥
प्रभे त्वं प्राभियेदाने । किमहं वाञ्छि साम्प्रतम् ।
सर्वानन्दप्रमीतिं त्वं मानसे मे विराजताम् ॥

रामेश्वर्यै

पञ्च कार्याणि मत्तो हि देवि त्वाकाशशीलः सदा ।
तमेकं कृत्यवन्तं त्वं किं कर्तुं मामिहेच्छसे ॥
वस्तुतो निर्गुणाकारा निराकारासि मायया ।
सा मायापि न कर्तव्या मायं, किं प्रभे त्वं न पश्यसि ॥
न मायां त्वमपाकर्तुं यतिशीलास भव प्रभे ।
मायां स्वीय चमत्कारां मत्वा शक्तिं परां भज ॥
हे योगाद्य संयोगे न शक्तिं लभते परम ।
हे योगाद्य निर्मुक्ता त्वां मिलेत् सदा प्रभे ॥
भोजनाच्छादनार्थं हि देहस्यैव परं मतः
शारिकाख्याय नर देवि! सर्वैवमीति ~~संसाघ:~~ निश्चय: ।
अत: शक्तिं त्वया नित्यं [illegible] स्थिरचेतसा ।
नापेक्ष्यं तु परस्मान्न कार्यं देवि सदा त्वया ॥
शक्तिं चामिकेयह देवि मनसा त्वं विचारयितरम
अभिमन्वो ~~शारिकायां~~ मां हि शारिकायां ये न पूर्वजा:
भारतरस्ते न विहार: किं सोऽस्मान्दोषपदारदय: ॥
अत: शारिकेस्य यत्नेन सारभूतं सदा तनम् ।
तद्गुरो: कृपया शास्त्रतु विज्ञातं तु त्वया प्रभे ।
शारिकेश्वरध्यानपञ्चेत्थं शिवतत्त्वस्य दायि स्मृत ।
परमापि त्वया दृष्टं तत प्रभे त्वत्प्रसादजम् ॥
नारायण कौशलं तदहं मायि, सत्यं ब्रवीम्यहमे
विगतेन्धनवह्नौ न ज्वाला भवितुमर्हति ॥
श्रीगुरो: करुणामूर्तेरसि दर्शनलालसा
ततो हि मा दिने रथं तु तमागन्तुमर्हसि यते ॥
दीवार गयौवा शनि [illegible]
[illegible]

[illegible] है [illegible] गुरुदेव को [illegible]
और आप को पत्र भी लिख दिया था जो
पत्रों में लगाया था [illegible] परन्तु अब मैं [illegible]
को कि [illegible] समाधि में गया था [illegible]
शाम को ६-८ बजे एक आवाज सुनाई दी
ने कहा कि "तुम को मन को समझाया
कि [illegible] नहीं समझ कर वहां नहीं जा सकते"
एवं मुझे [illegible] दिन की [illegible] याद आई
और ठीक मुझे समझ में आया कि मैं [illegible]
मैं [illegible] और [illegible] यह निश्चय [illegible]
[illegible] कि [illegible] और [illegible]
चलता है - और कश्मीर में कुछ होनेवाला है
या मुझे ही [illegible] है इस को [illegible]
या [illegible] जैसे है या और [illegible]
यह सब मन में आया परन्तु निश्चय [illegible]
मैंने [illegible] नहीं [illegible] मैंने उस को उ
[illegible] नहीं [illegible] चाहा और निश्चय
किया कि मैं तो अब नहीं जाऊंगा और
आप लोगों को भी [illegible] जाने।

बात होती है आप लोगों [illegible] पहारे
[illegible] में ही कुछ दिन रहना [illegible]
[illegible] को आशीर्वाद है।
यह है मेरी बात आगे ईश्वर [illegible]
स्वरूप ही प्रमाण है।
मैं अब शायद ही मसूरी चला जाऊंगा और
वहां से फिर पत्र आप को लिखूंगा
श्रीगुरुदेव के चरणों में मेरा प्रणाम कहना
श्री [illegible] को नमस्कार। प्रमाणीत
अब मैं अनुभव सिद्ध होने लग गया हूं क्योंकि
अब मुझे समाधि करतलगत हो गया है
यह सब आप को देखने [illegible] मन में [illegible]
था देखें कब और होता है न जाने
आप की कृपा से अब मैं [illegible] का आनन्द
[illegible] उपस्थित हो जायगा क्योंकि [illegible]
[illegible] हो रहा है।

आपका
आत्मानन्द

411 नमः श्रीगुरवे 7B

अध्यारोपित मातृमानकलनो-
द्भूतोद्भुतभासको-
योऽभिन्नो मितमातृतामपि भजन्-
नेकोऽस्त्यभिन्नोऽद्वयः।
सोऽस्माकं गुरु लक्ष्मणो विजयते
देवो वपुष्मानिव
भिन्नाभासवियोगयोगनिरतो
देवः स्वतन्त्रः शिवः ॥ (१)

चेतो! जडेषु विषमेषु विरोधमेषु
संक्षोभ नित्य विषयेषु रतिं विहाय।
सौन्दर्यसीम्नि परमामृतधामनि त्वं
सर्वात्मके किल गुरौ प्रियतां बधान ॥ (२)

व्याप्यत्वं व्यापकत्वं च मे त्वं मे पुत्रतापि च
पूर्णत्वं च समीपत्वमास्मि [illegible] महेश्वरे

3

412 7B

परमादरणीये। निखिल कलमष हारिणि प्रभे।

सादर नमस्कार।

आपका पत्र मिला था अनन्त श्री स्वामीजी महाराज का भी पत्र मिला था मैं वहाँ आने का संकल्प [illegible] था परन्तु मैं नहीं आ सका, सो और, कैसे सो जानिये।

वैसे तो मेरे जीवन में प्रायः अद्भुत अद्भुत बातें आती रहती हैं व सब तो आपको मैंने सुनाया [illegible] यह भी अद्भुत [illegible] है। मेरी गाड़ी [illegible] रात को थी [illegible] [illegible] [illegible] मैं [illegible] [illegible] [illegible] था [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और मैं [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] फिर अपने आप [illegible] [illegible] [illegible] शरीर [illegible] हो गया और [illegible] मैं उस विशेष [illegible] [illegible] और [illegible]

मान्यः स एको भुवि मादृशानां
ध्येयः पूज्यः स एवास्ति च सर्वदो नः ।
श्लाघ्यश्च पूज्यश्च विमर्शनीयो-
नान्योऽस्ति कश्चिन्ननु लक्ष्मणान्नः ॥ अस्मिकम्
४

लोमे न लब्धा लभते न देहं
लोके न जीवः पितरौ विना हि ।
नूनं तथैवाप्नोति निजं स्वरूपं
सत्यं शिवं नैव गुरुं विनापि ॥
(५)

क्षिणोति दुःखं विधुनोति पापं
ददाति सौख्यं यदहर्दिवम् ।
करोत्यनन्तं निजतो जनान्यस-
तमेव सेवे गुरुलक्ष्मणार्यम् ॥
(६)

ज्ञानक्रियारूपमयी च शक्तिं
श्रीशारिकां श्रीप्रमयामेशमम् ।
वन्दे महामोहविनाशदक्षां
सिद्धैः सदा सेवितपादपद्माम् ॥
(७)

कायेन वाचा मनसाभिवन्दे, स शारिकं श्रीगुरुलक्ष्मणम् ।
यदाश्रयाद्धं गुरुवत्तरमवाप्तः पश्यामि विश्वं निजरूपमस्मि ॥

परमाराध्ये प्रेमे ।

आपके क्रमशः दो पत्र मिले समाचार ज्ञात हुआ । मैं तो आनन्द से स्वस्थ हूँ परन्तु श्री जोशी जी का स्वास्थ्य कुछ खराब हो गया है वह यहाँ से देहली गये हुए थे वहाँ से आये हैं अभी सेहत विचार नहीं हो पाया है । कि हम लोग कब आयेंगे । हमारा अकेला आना ओर बात है । केवल इस प्रोग्राम को विचार से जोशी जी के उनके साथ होना होगा (हो जायेगा) और सब शीघ्र में सूचित करेंगे कुशलता पत्र तो देते ही रहना चाहिये आपका पत्र में बहुत विलम्ब करते हैं परन्तु अब कोई पूछताछ में लगा रहा हूँ मैं भी निकम्मा हो गया हूँ दर्शन करें ॥

आपका

6 B
L10

श्रीशक्तिं शारिकां नौमि
सर्वदां ब्रह्मवादिनीम् ।
तथा जगद्गुरुं नौमि
लक्ष्मणं च विलक्षणम् ॥
(१)

विद्यारूपां प्रभां नौमि
स्थितामन्तः प्रभां पराम् ।
लक्ष्मीरूपां पुनर्नौमि
पद्मिनीं च विकस्वराम् ॥
(2)

यावन्तः शक्तयस्तत्र
शक्तिमन्तश्च ये पुनः ।
तद्दृष्टिपथे सन्ति
मत्प्रीतिविवर्द्धकाः ॥ प्रीतेस्तु वि
तांस्तांश्च पुनर्नौमि
तत्प्रीत्या विवशीकृतः ।
प्रभे त्वां परमाराध्यां
नौम्यहं हि पुनः पुनः ॥
(४)

6D L9

हृदिस्थां त्वां प्रभे नित्यं
नैवे कमललोचने मि ।
बहिःस्थां नैव जानामि
(शांते) पणमीलितलोचनः ॥
(१)

भजस्व शान्तिं धीरहृदय चित्ते
विकल्पजालं जहि सकलमेव ।
स्वयंप्रकाशासि न तेऽस्ति बन्धो
विद्योतमाना भजलोकयात्राम् ॥
(२)

मायाभासित कार्यकारणवता संसेव्यमाना प्रभे!
न त्वं भासि कदापि दृष्टिपथगा सर्वात्मना सर्वदा ।
इत्यालोच्य मुहुर्निराशहृदयः श्रान्तश्च सुप्तोऽप्यहम्
आनन्दामृतवर्षिणीं भगवतीं सद्यः स्थितां त्वां भजे ॥
(3)

प्रेक्षाव्याकुलितस्य दर्शनदिनात्कालो व्यतीतो महान्
मोहान्धस्य गतस्मृतेश्च सहसा मोहस्त्वया नाशितः ।
पूज्या त्वं जगदम्बिकाऽसि महती पूज्या प्रणम्या मम
नित्यं त्वां प्रणमन् स्मरामि हृदये पश्यामि चाग्रे स्थिताम् ॥
(४)

प्रभे त्वं प्राणिनां लोके चेतनाप्रातिभात्मिका
सर्वेषां भासि तेनैव त्वमेका शरणं मम ॥

4

6A 29

सर्वमङ्गलरूपे ! मे त्वं प्रेमप्राणवल्लभा
चराचरस्य जीवस्य शान्तिर्योगिनस्तथा ॥ 1
विना त्वां केऽत्र जीवन्ति भविनो भववल्लभे ।
त्वमेवैकासि भूतानां जीवनं जीवतां सताम् ॥ 2

त्वं सुप्रसन्नासि सदार्द्रचित्ता
दुःखं न ते क्वापि कदापि भेदं ।
धैर्यं त्वमीः शान्तमनाः सदा त्वं
कार्पण्यलेशो न तवास्ति । चित्ते ॥ 4

नाचं निरस्य भज शान्तिमनन्यरूपे
स्वात्मन् स्वभावविमले परमात्मरूपे ।
ध्यायन्तमेव तत एव सदैव पश्य
स्पन्दं स्वभावनिभृतं निजमात्मभूतम् ॥ 5

6A 210

श्री मते मोहनायास्तु
नीतेर्मे प्रीतिसंयुता ।
मोतीलालाय महते
नमो मेऽस्तु पुनः पुनः ॥

SB 27

कर आपको [illegible] देता हूं। क्योंकि जैसे
किसी आपने मुझे धन्यवाद दिये हैं वह तो आ
को है, प्राप्त थे उस में मेरा व्यापार, कुछ
नहीं, वह तो आप के प्रेम ही से हो रहा था
नहीं तो मैं कौन हो रहा हूं।

अन्त में नमस्कार स्वीकार करके लिये
कष्ट करने को आप लिख रहे हो। सो
आपके नमस्कार को स्वीकार करने के लिये
मैं कष्ट नहीं करता हूं, बल्कि आनन्द पूर्वक
नमस्कार को स्वीकार करता हूं।

व्यतिषजति पदार्थान्
आन्तरः कोऽपि हेतुः।
न खलु बहिरुपाधीन्
प्रीतयः संश्रयन्ते।

आपका
कुशलाभिलाषी
रा. ला.

पहला मोड़ First fold

BB 28

[illegible]
ग्राम - [illegible]
जिला
दरभंगा
बिहार

श्रीपरमानन्द मयि प्रेमे।
विजयतराम् भवती।

एक पत्र मैं आपके सेवा में भेजा था
आपसे प्रार्थना की थी कि १० प्रति
श्रीगुरुस्तुति भेजवा देने के लिये
परन्तु अद्यावधि उसका कुछ उत्तर
नहीं मिलने से पुनः यह पत्र भेज
रहा हूं शीघ्र १० प्रति भिजवा भी
कृपा करेंगे श्रीमती देवी सा [illegible]
जी तो मेरा सम्भव नमस्कार कहें
गे आजकल मैं पटना आया हूं
अभी यहां रहने कहीं [illegible] है।
आपका वाल्मीकीय रामायण समाप्त
हो गया होगा एक पत्र बनारस से
लौटकर यहां मिला था उसको

5 A 28

(18)

अन्त में वहाँ जो मैं लिख रहा (था)
आपका हीं मिला ही होगा।

श्रीमान् गुरुदेव के चरण कमलों में
मेरा प्रणाम निवेदन कीजियेगा
विशेष क्या लिखें

ज्ञानक्रियाभ्यां यः सिद्धः स सिद्ध इति
कथ्यते। ज्ञानक्रियाभ्यां यो मुक्तः
ध्येयकर्मभ्यां स मुक्त इति कथ्यते॥

स्वामिन् साकल्यं तु वैयर्थ्य
अपूर्णत्वावभासिकर
हेत्वन्तरं पूर्णतर ग्रन्थकार
लिखे हैं वह इस में है नया ॥

आपका
रा. मो.

5 A 27

4B 26

जानाति सौरभ्यं पदपङ्कजस्य
चेतो मदीयं न भवान् पीशे !
भुक्त्वा द्विरेफं मकरन्द सौरभ्यं
न वेत्तुमीष्टे कमलाकरोऽपि ॥ ६

अनन्तजन्मार्जित पुण्यराशेः
फलं, त्वदीय स्मृतिगोचरत्वम्
-लब्धस्य मे देव! सदैव चेतो-
विलोकितुं वाञ्छति तेऽङ्घ्रि पद्मम् ॥
७

देव! त्वदीय करुणावरुणालयस्य
कल्लोल शीकर सुसिञ्चन शान्त तृष्णः
नीत स्त्वया धृतकरोऽन्ध इवाहमीश !
संकल्पपङ्क बहुदूर पथेऽप्रयामि ॥
८

[illegible]

भवतामनुचरो रामेश्वर

4B 26

57 84

अपीन्द्रवज्रादपि विष्णुचक्रतो
न हन्यते यो भवदोषविप्लवः ।
तदादिदोषक्षणनैकहेतवो
जयन्ति मच्छ्रीगुरुपादपांशवः ॥

(१)

अनन्तरूपेण भयप्रदेन
विभासमानेन जगद्द्रुहेण ।
गृहीत आत्मं नितरां विपन्नः
कृतः प्रवृद्धो भवता समुद्धः ॥

(२)

विहाय देवं सकलं परोक्षं
समक्षभूतं गुरुमेकदेवम् ।
नमामि सोऽहं फलदं समक्षं
श्रीलक्ष्मणं लक्ष्मणयोगिकार्यम् ॥

(३)

भवन्तमासाद्य जनो विमुच्यते
न चास्ति पारं यदि कोऽपि दुर्हृदः । पृथ्वियः
तदत्र भावो महिमा न हीयते
... यदि ॥ ...
दिवा न नश्यन्ति च ...

(४)

पहला मोड़ first fold

57 84

5

4A 46

विजयतेऽस्तु ।

यदि प्राप्स्यामि कालीकलनात्मिकं नूतनं ग्रन्थविशेषं क्रमशस्तदा प्रयतिष्येऽहं श्लोकमनुवादयितुम् । मन्ये च पूर्वं सर्वं कुशलिनः स्वीयानन्दमग्नाः स्वोचितकार्यसंलग्ना भवेयुः । इमे च श्लोकाः श्रीचरणपद्मयोः कृपाकटाक्षमवलोकमानस्य मम हृदयाद्विनिर्गताः इति तेभ्यः समर्पिताः । विदितवादितव्यपदौ देव्यै । कोऽपि हि गुरुपादेशानि साम्प्रतम् एते स्वीयावेशप्रकाशमानं । अर्चनीयेऽत्र पूज्यपादे एषमे सदा तुः प्रणामः । शिष्यते मनोरथैकमोहनः तमहं किं ब्रवीमि । दयालो समर्थस्य नः सर्वथैव दयालुता ॥

— रामेश्वरः ।

4A 46

यस्यां च सततं महिमैव भाति
सर्वात्मना सततमकल्पहीनः ।
यत्नैरलभ्यमपि ते दुर्लभां तां
श्रीसद्गुरो नौमि दयार्द्रदृष्टिम् ॥ १
आज्ञा त्वदीयातु कृपात्मिकैव
स्पन्दात्मिका कालकलाऽव्यतीता ।
अशेषनामात्मनि मेयगर्भा
बिन्द्वात्मिका नादकलास्वरूपा ॥ २
विमर्शरूपा समनात्मिका या
प्रकाशमानापि तदात्मिकैव ।
तं नौमि देवं विदुषां वरेण्यं
श्रीलक्ष्मणं व्यक्तसमस्तलक्षणम् ॥ ३ नयकं इत्यादि
द्रष्टुं त्वदीयपदपङ्कजमद्वितीय-
दृष्टिस्त्वयैव विहिताऽत्र न संशयो मे ।
किन्तु प्रभो यदनयैव समस्तविश्वं
पश्याम्यतः सकलमेव भवत्स्वरूपम् ॥ ४
आमोदयन्ति हृदयं परितः परागाः
पीयूषवर्षिकिरणैः रसयन्ति चन्द्राः । नखानामनेकत्वात्
देव त्वदीयपदपङ्कजमेति यस्य
स्वान्ते तु तस्य मधुराश्च दिशो भवन्ति ॥ ५

न त्वं प्रभो विजानासि
स्नेहं स्नेहिनमेव वा
आगतोऽसि तन्यस्तत्र
दोषस्ते नहि कश्चन ॥११

कथयन्तु जना लोके
मूढं मूढतमं तु माम् ।
त्वत्पादपङ्कजप्रीतिः
प्रभो मे नापसर्पतु ।१२

अनाहतोऽप्यनेकधा:
स्नेहो मे त्वयि जीवति
वने विसर्जितो बाले-
आम्रप्रसूनानीव सम्प्रति ॥१३
मन्ये सर्वं सहे सर्वं ब्रूषे यद्यच्च साम्प्रति ।
दीनस्य याचकस्येव स्वभावं स्नेहिनो मम ॥ १४
न मन्ये न च पश्यामि दोषलेशं प्रभो त्वयि ।
मन्ये जानामि चात्मानं सर्वदोषसुनिर्भरम् ॥१५
यदि प्रभो मया कश्चिदपराधः कृतस्त्वयि ।
दण्डनीयस्त्वयावश्यमस्म्यहं पुरतो नतः ॥१६

देवराजाग्रके स्थितासि
पूजार्थं प्रभवोऽत्राहम् ।
इष्यते गजदोषौ मे
प्रभावमेव भातितौ ॥१७

उपेक्षितः त्वया चाहं
पौरैः प्रत्यन्ते धिक्कृतः
न त्यजामि त्वयि स्नेहं
पश्य मे स्नेहमीदृशम् ॥१८

वक्तव्यं चापि कर्तव्यं
रोच्यते तव हि साम्प्रतम्
तथा प्रयुक्तं मया ह्येतत्
पितृपक्षे सान्निमम ॥१९

जीवितव्यं शोचितव्यं च
मयि निर्भरते सर्वदा ।
यतः प्रभो त्वया दत्तं
पञ्चकृत्य विधातृता ॥२०

केवलं चिन्त्यैव देवासि
केवलं चिच्चास्म्यहं पशुः ।
मा पश्य त्वं पशुं मां वै
त्वयैवास्मि कृतः शिवः ॥२१

तवैव कामाश्रितः
— रामेश्वरस्य ।

3H 25

विलोक्यते नाथ! यस्त्वं कोऽस्ति ते
प्रसादद्दृष्ट्या भवता भवेऽस्मिन् ।
स एव मान्यो भवतीश वन्द्यो
महान् यशस्वी भव भूतिमांश्च ॥

श्रमः श्रीगुरवे ।

3A 25

अगाधाय समुद्राय व्याप्रविशेष भगवन्
दीयतेऽर्घः प्रदीपोऽपि तथेयं गुरवे स्तुतिः ।
भवतो दयया नित्यं शान्तः शान्तो भवज्जनः
चिकीर्षति स्म ते पाददर्शनं किन्तु नाभवत् ॥
पारतन्त्र्यात्परं दुःखं नास्त्यन्यज्जगतीतले ।
तद्दूरीकुरु मे देव! दीनोद्धारधुरन्धर! ॥
प्रार्थनीयाऽऽज्ञया वास्तु निरोधो रोध एव हि ।
सद्धोऽस्मि जोशिना, तत्रागन्तुं शक्नोम्यहं नहि ॥
आज्ञापयन्तु पत्रेण मामेवागमनाय वा
प्रेषयन्त्वथवा यन्त्रं समानीतं भवदाज्ञया ॥
आज्ञापत्रे समायाते रोधकोऽयं भवेन्न हि
जानन्तो योऽस्त्यग्राह्या भवदाज्ञा प्रभोः सदा ॥
भवद्रूपो यदि रोचेत तदैव स्याद्धितं मम ।
नार्थी धैर्यधरो दृष्टोऽतो याचे शीघ्रतां प्रभो ॥

तत्रभवतामनुचरः
रामेश्वरः ।

1A 62

परमानन्दबोधाब्धिं कोटिकाम मनोहरम् ।
कोटिचन्द्रप्रभादीप्तं नौमि श्रीगुरुमीश्वरम् ॥

स्वत्पादपद्ममकरन्दरसं निषेव्य
वीतस्पृहः स्वजनदारसुतेष्वसक्तः । ः
स्वेच्छन्द एव विचरामि भवत्कृपातस्- चेन ॥
तत्त्वोपदेशाविधुताखिलपाशजालः ॥ ।
स्वानन्दतुन्दिलम, सद्विषयेष्वसक्तं
स्वान्तं मदीयमधुना परमेश्वरं त्वाम् । ॥
प्रेम्णा सदैव भजतीदमुदारसत्वं
सर्वप्रदं समदृशाच्च गुरुं प्रसन्नम् ॥ ः ॥

असाध्येऽर्थे प्रवर्तेत बुद्धिमान्न कदाचन अनीकस्य
स्वसामर्थ्यानुसारेण कार्ये लोकः प्रवर्तते ॥ रस्य
असाध्ये साध्यतायातं ये कुर्वन्ति विमोहिताः
निष्पीड्य सिकतां ग्रन्था मिच्छान्ति स्नेहसंग्रहम् ॥
स्वच्छन्दोऽपि, समर्थोऽपि भोजने गमनेऽपि च
त्वदिच्छानुगताः सर्वे वयमन्तो यतः प्रभो ॥
इच्छया स्वेच्छयाहं भयातन्नितरां मया (प्रा)
अतस्तां न प्रकुर्वेऽहं कस्मिंश्चिद्विषये प्रभो ॥

अनन्तशक्तिसम्पन्नं ...
श्रीगुरुं सन्ततं स्तौमि लक्ष्मणं प्रणतार्तिहम् ॥
(१)
देहादिमितमातृत्वं प्रलयं याति यत्स्मृतेः ।
तमद्भुतकृपं नौमि श्रीगुरुं लक्ष्मणाभिधम् ॥ एकः
(२)
कारं कारं स्तुतिं वेद्मि स्तुतिर्भूता गुरोर्नहि
अभ्यावृत्या पुनः कुर्वे यतमानः स्तुतिं गुरोः
(३)
लोकोत्तरस्याप्यनन्तस्यानन्तशक्तेर्गुरोः कथम्
परिपूर्णा स्तुतिः स्याद्वा जन्मकोटिशतैरपि ॥
(४)
अनन्तजन्मपापघ्नी सद्यः शुद्धत्वदायिनी ।
श्रीगुरोः स्तुतिरेकास्ति स्तुवद्भिस्त्वनुभूयते ॥
(५)
मादृशः कोऽधमो लोके जायेत भुवि पामरः ।
सोऽहं दर्शनमात्रेण तारितोऽसौ कृपालुना ॥
(६)
मन्ये न श्रीगुरोर्दृष्टेः पापोदासस्य भासते ।
कृपया पाटिपूर्णायां भाति शिष्यस्य दासता ॥
(७)
श्रीगुरोः क्रियते या या स्तुतिः कापि विभाति सा-
अपूर्णैव तथापीयं चित्रं यच्छाति पूर्णताम् ॥
(८)

IB L1

विश्वं [illegible] कृपयैव यस्य
देहश्च पीयूषरसस्य पिण्डम् ।
[illegible] जानामि शिवं समेकं
तं मे गुरुं लक्ष्मण एकवन्द्यः वन्द्य एकः
(९)

भेदो न भिन्नो न निजः परश्च
मृत्युर्न जन्मापि कदापि भाति ।
विश्वावभासोऽस्ति निजावभासः
श्रीमद्गुरो रत्न कृपैव हेतुः
(१०)

भ्रान्तिं [illegible] वाद्दृश्य तूर्णं
श्रीमद्गुरोः पाद भावित्य शक्तिम् ।
प्रयान्तु सन्तो! नरजन्म लाभ-
साफल्यहेतुं शिवतामुपेतुम् ॥
(११)

यत्पाद स्मृतिरेवैका सर्वाभीष्ट फल प्रदा
नमामि स्तौमि याचेऽहं तमेकं गुरुलक्ष्मणम् ॥
(१२)

चरण चञ्चरीकस्य
रामेश्वरानन्दस्य

IB L2

यथा यथा कारयति मया, देवो भवांस्तथा ।
तथा करोमि नास्त्यत्र सन्देहो मे मनागपि ॥
अत एव देवप्रश्नस्य किं ददाम्युत्तरं त्विदम् ।
देव एव प्रमाणं मे भूते चापि भविष्यति ॥
यदत्र ब्रुवन्त देवाऽहं स्वीकरोमि प्रहृष्टधीः
नैव स्वेच्छामि न चेच्छामि किंचित्क्वापि कदाचन ॥
व्यक्तीकर्तुं स्फुटं स्वीयं चेतो देव! प्रसन्न ।
नो भाति कल्पना काचित् न वाऽवरणं मनाक् ॥
दया रक्षार्थ सदा दासे प्रेम्णा केन प्रपूजके
वासः श्रीभगवन् देव। क्रियाहीनस्य नोचितः ॥

श्रीमत्क चरण चञ्चरीकस्य
रामेश्वरस्य

अयि अनन्तानन्दोद्वेलनशीले प्रभे।

विजयस्तेऽस्तु

श्रीगुरुस्तुतिं समवाप्य नोत्तारितं पत्रं कस्मापि भवत्यां पत्रमिदं देहलीतः सम्प्रति प्रेष्यते। अतएव समयं तु नागन्तुमशकुवम किन्तु निश्चितं वाचमि यत अस्य मासस्यान्तिमे दिवससमीपेऽहम् काश्मीरे भविष्यामीति। मयासह मान्यमं श्री रामेश्वर जोशीजी महोदयोऽप्यागमिष्यति अत आ-काशमार्गेणैवागमिष्यामि द्वौ मृत्यौ परैव स्थलमार्गेण गमिष्यतो यौ स्वामिदेवगिरि स्थाने तावत्स्थास्यतः। सम्भवं यदि तदा कश्चित्स्थानं दृष्टिपथे स्थापनीयम यत्रास्माभिः शुल्कं दत्त्वा वर्षमात्रावधि स्थातव्यम्। पुस्तकमेकं श्रीगुर्वर्थं प्रेषितम द्वितीयं भवत्यर्थं साकम ध्यानाय आगमे कर्ता चित्त। पुस्तके किमपि लिखितं नोत्सादितं गुरुपादैः भवत्यै तत्साधु कृतम। आगते मयि स्वयं मह्यं प्रार्थनां करिष्यामि। यदि ते भवे-रे जेत तर्हि किमपि लिखिष्यामि।

चमोधर्मो गुणं दोषं महत्त्वं लघुतामिमाम् ।
भासयन्त्यपि मे भातु प्रभा सैव निरञ्जना ॥१
अबुद्धो बोध्यते लोकः प्रबुद्धः सुप्रबोध्यते ।
सर्वबोधमयी शक्तिः प्रभो त्वं केन बोध्यसे ॥२
अहं यच्च कृतं यच्च वक्ष्यते यादृध्यास्यते
सर्वं मे त्वमेवासि यतोऽहं ते वशंवदः ॥३
श्रुतं च श्रूयते चापि प्रोक्तं यत् प्रोच्यतेऽपि यत्
किन्तु प्रभो विजानाति तथ्यं हृदयम्, विभो ॥४
गगनेऽपि करोत्येवं मालिन्यं कल्पयन्ति ये ।
कल्पयन्तु च ते स्नेहे मालिन्यं च विशुद्धताम् ॥५
स्नेहः स्वयं स्वतः स्वच्छः सर्वमालिन्यधावकः ।
न स्नेहोऽपेक्षते किञ्चित् स्वविशुद्धौ हि कारणम् ॥६
त्वयि प्रभो मम स्नेहोऽकृत्रिमोऽस्त्यजरामरः ।
नापेक्षते विशुद्धत्वं नाप्याप्नोति मलीनताम् ॥७
दर्शनादेव मे स्नेहस्त्वयि सुप्तो हि जागृतः ।
न कृतस्तु मया स्नेहस्त्वया चापि न रक्षितः ॥
तिरस्कृतस्त्वया बुद्ध्या निविडश्च पुनः पुनः । ८
अफलोऽपि फलं सूते नित्यकर्मैव किन्त्वयम् ॥ ९
विषसंस्पर्शतो दुष्टो दृष्टः स्नेहस्त्वया प्रभो ।
दृष्टो भुजङ्गसंस्पृष्टश्चन्दनः किं विषान्वितः ॥१०

वाणि हं पशुः वै ... शिवः ॥२१॥

(नित्यकर्मणः फलं किञ्चित्भवति यद्यपि
तथापि प्रत्यवाय परिहाररूपं फलं भवत्येव ।)



